CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

12.4

38-22

जैन साहित्य में कृष्ण

38-22

डॉ० महावीर कोटिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्ण चरित सम्बन्धी जैन साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा है। इस परम्परागत साहित्य में द्वारकाधीश कृष्ण के जिस वीरश्रेष्ठ शलाकापुरुष वासुदेव के व्यक्तित्व का वर्णन हुआ है वह उनके ऐतिहासिक स्वरूप के सन्धान की दृष्टि से न केवल विचारणीय है अपितु महत्त्वपूर्ण भी है। डॉ० कोटिया ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि भाषाओं में उपलब्ध इस परम्परागत साहित्य का एक सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए, कृष्ण चरित के सन्धान का जो प्रयत्न किया है वह कृष्ण चरित के जिज्ञासु पाठकों को कृष्ण चरित में अवगाहन करने की लीक से हटकर एक नई दृष्टि प्रदान करता है। अपनी मौलिक विषयवस्तु, नवीन तथ्यों की उद्भावना तथा अज्ञात सामग्री के विवेचनापूर्ण प्रस्तुतीकरण ने जहाँ इस पुस्तक को एक संग्रहणीय सन्दर्भ-ग्रन्थ का स्वरूप प्रदान किया है, वहीं इसे रोचक व उपादेय भी बना दिया है।

कृष्णपरक जैन साहित्य के शोधार्थियों के लिए सर्वाधिक उपयोगी कृति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन साहित्य में कृष्ण

•

लेखक

डॉ० महावीर कोटिया

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक 17

जैन साहित्य में कृष्ण
(समीक्षा)

डॉ. महावीर कोटिया

प्रथम संस्करण 1984

मूल्य : 12/-

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
बी/45-47, कनॉट प्लेस
नयी दिल्ली-110001

मुद्रक
अंकित प्रिंटिंग प्रेस
शाहदरा, दिल्ली-110032

आवरण शिल्पी : हरिपाल त्यागी

ग्रन्थमाला प्रधान-संपादक
सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री
डॉ. ज्योति प्रसाद जैन

©
BHARATIYA JNANPITH

JAINA SAHITYA MEN KRISHNA : *by* Dr. Mahavir Kotiya. Published by Bharatiya Jnanpith, B/45-47, Connaught Place, New Delhi-110001. Printed at Ankit Printing Press, Shahdara, First Edition 1984. Rs. 12/-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

भारतीय ज्ञानपीठ : संस्थापना 1944

मूल प्रेरणा
दिवंगता श्रीमती मूर्तिदेवी जी
मातुश्री श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

अधिष्ठात्री
दिवंगता श्रीमती रमा जैन
धर्मपत्नी श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

कृष्ण
भारत भू पर हज़ारों वर्ष पहले हुए,
पर उनके प्रति
भारतीय जन की श्रद्धा और प्रेम ने
'कृष्ण' संज्ञा को
अत्यन्त लोक प्रिय बना दिया।
तब से आज तक
इस देश के
हर गाँव-शहर में
गली-मुहल्ले में
अनेक कृष्ण, कन्हैया, गोपाल, गोविन्द
होते रहे हैं
और समय की सड़क पर चलते हुए
गुज़र गये हैं।
इन अनगिनत में एक थे
मेरे दिवंगत पूज्य पिता
श्री कन्हैया लाल जैन
अद्भुत कर्मशील, स्वाभिमानी
और ईमानदार
'एकला चलो रे' का
जीवन भर प्रण निभाते हुए,
उन्हीं को सादर समर्पित है
कृष्ण चरित से सम्बन्धित यह पुस्तक !

—महावीर कोटिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में परम्परागत जैन साहित्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। इस साहित्य में ऐसी अनेक कृतियाँ हैं जिनमें कृष्ण वासुदेव का चरितवर्णन हुआ है। कृष्ण वासुदेव से सम्बन्धित यह परम्परागत साहित्य प्रायः अधिकांश के लिए आज भी अपरिचित है। प्रस्तुत कृति में जैन परम्परागत कृष्ण साहित्य और उसमें वर्णित कृष्णचरित के स्वरूप के उद्घाटन का प्रयास है। कृति की विषय वस्तु पाँच अध्यायों में विभक्त है। इसमें न केवल सम्बन्धित विषय सामग्री ही प्रस्तुत की गयी है अपितु साथ में यथावश्यक उसका तुलनात्मक दृष्टि से विवेचन व विश्लेषण भी है। आशा है, जैन साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की पृष्ठभूमि और उसके स्वरूप का परिचय इससे पाठकों को हो सकेगा।

जैन परम्परागत साहित्य में कृष्ण का एक विशिष्ट स्वरूप है और वह है उनका शलाकापुरुष वासुदेव का रूप। अपने वासुदेव रूप वे एक अप्रतिम वीर, महान् शक्तिसम्पन्न राजा, द्वारिका के अधिपति तथा आध्यात्मिक भावना से ओतप्रोत विशिष्ट महापुरुष हैं। उनका गोपीजन-प्रिय एवं रास-क्रीडाओं के नायक लीला-पुरुषोत्तम का रूप जैन परम्परा में अनभिज्ञ रहा है। कृष्ण के ऐतिहासिक स्वरूप के सन्धान की दृष्टि से यह विषय-सामग्री सुधीजन का ध्यान आकर्षित कर सके यह अपेक्षित है।

सन्दर्भों की अधिकता और जहाँ कहीं उनके विस्तार हो जाने से पुस्तक के अन्त में उसकी सन्दर्भ तालिका दे दी गयी है।

प्रस्तुत विषय पर लिखने की प्रेरणा मूलतः मुझे स्व० महेन्द्र जी (संचालक व सम्पादक 'साहित्य-सन्देश', आगरा) से मिली। पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर उनका पुण्य-स्मरण मेरा कर्तव्य है। मैंने इस विषय से सम्बन्धित अनेक लेख लिखे, जो पत्रिकाओं तथा स्मृति-ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। 'जिनवाणी' मासिक, जयपुर में इस विषय-सामग्री से सम्बन्धित कई लेख क्रमशः प्रकाशित हुए थे। उन लेखों की सामग्री को देखकर मुझे डॉ० नरेन्द्र जी भानावत (एसोशिएट प्रोफ़ेसर, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर) ने प्रेरित किया कि मैं इस विषय सामग्री को आधार बनाकर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करूँ। फलतः उनके आग्रह, अनुग्रह और निर्देशन में मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर की पी० एच० डी० उपाधि हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप' विषय पर शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया। प्रस्तुत पुस्तक इसी शोधप्रबन्ध की विषय सामग्री पर आधारित है। विषय-सामग्री के इस रूप में प्रस्तुतीकरण में डॉ० भानावत की प्रेरणा प्रमुख रही है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठ से इस पुस्तक का प्रकाशन होना मेरे लिए अत्यन्त सुखद संयोग है। मैं इसके लिए ज्ञानपीठ के निदेशक श्रीमान् लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा प्रकाशन अधिकारी डॉ० गुलाबचन्द्र जैन का बहुत आभारी हूँ।

कानपुर —महावीर कोटिया
फरवरी 18, 1984

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

प्राक्कथन

१. कृष्ण-चरित वर्णन : पृष्ठभूमि १

कृष्ण : शलाकापुरुष वासुदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव, वैष्णव पुराणों का पौण्ड्रक प्रसंग, वासुदेव : विरुद स्वरूप, महाभारत में कृष्ण का वासुदेव स्वरूप, जैन-परम्परा में वासुदेव की विशिष्टता का वर्णन, कृष्ण वासुदेव और तीर्थंकर अरिष्टनेमि, छान्दोग्य उपनिषद् में घोर आंगिरस का उपदेश, अरिष्टनेमि और आंगिरस, निष्कर्ष। ... १०

२. कृष्णचरित सम्बन्धी जैन कृतियाँ

जैन साहित्य की परम्परा, आगम साहित्य, आगमेतर साहित्य, आगम साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की प्रवृतियाँ, कृष्णचरित सम्बन्धी आगमिक कृतियाँ, (समवायांगसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, अन्तकृद्दशा, प्रश्नव्याकरण, निरयावलिका, उत्तराध्ययन), आगमेतर साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की प्रवृतियाँ, कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमेतर साहित्य (प्राकृत कृतियाँ, संस्कृत कृतियाँ, अपभ्रंश कृतियाँ, हिन्दी कृतियाँ)

कृतिपरिचय—वसुदेव-हिण्डी, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण, प्रद्युम्न-चरित, त्रिषष्टि-शलाकापुरुष-चरित, रिट्ठणेमिचरिउ, तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु, णेमिणाहचरिउ, गयसुकुमालरास, प्रद्युम्नचरित (सधारू कवि), बलिभद्र चौपई, हरिवंशपुराण (शालिवाहन—हिन्दी), नेमिश्वर रास, खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण व उत्तरपुराण, नेमिचन्द्रिका।

३. जैन साहित्य में कृष्णकथा ४३

जैन कथा की प्राचीनता, जैनागमों में कृष्णकथा, जैन कृष्णकथा का विकसित स्वरूप : हरिवंशपुराण की कथा, जैन कृष्णकथा :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवान्तर प्रसंग, (अरिष्टनेमि चरित, गयसुकुमाल चरित, प्रद्युम्नचरित, पाण्डवचरित), जैन कृष्णकथा : निष्कर्ष ।

४. जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप-वर्णन ५५

कृष्ण स्वरूप वर्णन : दो आयाम, महान वीर व शक्तिसम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष (आगमिक व पौराणिक कृतियों में वर्णन का स्वरूप, हिन्दी कृतियों में वर्णन का स्वरूप, आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष, आगमिक व पौराणिक कृतियों में वर्णन का स्वरूप, हिन्दी कृतियों में वर्णन का स्वरूप ।)

५. कृष्ण का बाल-गोपाल रूप ७४

जैन साहित्य में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश :
1. नटखट व चपल ग्वाल बालक 2. कृष्ण का गोपाल वेश ।
कृष्ण के बाल-गोपाल रूप के स्रोत, जैन पौराणिक कृतियों में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का वर्णन । हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का वर्णन ।

सन्दर्भ-तालिका ८१

परिशिष्ट : ९१

(क) महाभारत की कृष्ण कथा
(ख) घट जातक की कृष्ण कथा
(ग) सन्दर्भ साहित्य ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3823

कृष्ण-चरित वर्णन : पृष्ठभूमि

कृष्ण-चरित क्षेत्र, काल और सम्प्रदाय की सीमाओं का अतिक्रमण कर व्यापक रूप से भारतीय जन-जीवन में आकर्षण का केन्द्र रहा है। यही कारण है कि विभिन्न भारतीय भाषाओं और धार्मिक सम्प्रदायों के साहित्य में कृष्ण-चरित का अतिशय वर्णन उपलब्ध है। जैन परम्परा के साहित्य में भी कृष्ण-चरित का वर्णन करने वाली अनेक कृतियाँ प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा अन्य कई आधुनिक भाषाओं में उपलब्ध हैं। इस विशाल परम्परागत साहित्य की जानकारी होने पर यह स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि जैन परम्परा के इस साहित्य में कृष्ण के चरित व व्यक्तित्व का वर्णन किस प्रकार हुआ है। संक्षेप में इस जिज्ञासा की पूर्ति का प्रयत्न यहाँ किया गया है।

हम जानते हैं कि महाभारत, हरिवंशपुराण तथा श्रीमद्भागवत-पुराण आदि प्राचीन एवं प्रसिद्ध पौराणिक कृतियों में वर्णित कृष्ण-चरित भारतीय जन-जीवन तथा भारतीय साहित्य पर अपना सुनिश्चित प्रभाव शताब्दियों से रखता चला आया है। इन कृतियों की परम्परा के कृष्ण-चरित की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें कृष्ण सामान्य मानव नहीं, अपितु स्वयं देवाधिदेव भगवान् हैं और वे इस पृथ्वी पर मानव रूप में अवतरित हुए हैं। उनके अवतरण का एक निश्चित उद्देश्य है, और वह है पृथ्वी पर उत्पन्न दुष्ट दैत्यों का संहार करना तथा धर्म की स्थापना करना। अतः इस अपेक्षाकृत ज्ञात एवं लोकप्रिय साहित्य में कृष्ण-चरित का वर्णन प्रधानतः भगवत्-लीला का वर्णन है और इस वर्णन में अलौकिकता का महिमामय आवरण सर्वत्र द्रष्टव्य है। वे भगवान्, इन कृतियों में तथा इनसे प्रभावित साहित्य में, जो कुछ भी करते हुए वर्णित हैं, वह सब उनकी लीला है और श्रद्धालुजन उनके आगे नतमस्तक हैं। वैष्णव धार्मिक परम्परा का कृष्ण-साहित्य इस विशिष्टता का सर्वत्र संवाहक है।

परन्तु जैन परम्परागत साहित्य में यह स्थिति भिन्न है। अवतारवाद की अवधारणा जैन-परम्परा में मान्य नहीं है, अतः स्वाभाविक है कि जैन-साहित्य के कृष्ण न भगवान् के अवतार हैं और न ही स्वयं भगवान् हैं। अपेक्षाकृत महापुरुषों (शलाका-पुरुषों) से सम्बन्धित जैन परम्परा की अपनी एक भिन्न अवधारणा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस अवधारणा के अनुसार लोक में विशिष्ट अतिशयों से सम्पन्न पुरुष काल क्रम से जन्म लेते रहते हैं। परम्परानुसार एक काल खण्ड[1] में ऐसे त्रेषठ शलाका-पुरुष जन्म लेते हैं। इनकी त्रेपठ संख्या इस प्रकार है—तीर्थंकर चौबीस, चक्रवर्ती बारह, बलभद्र नौ, वासुदेव नौ, तथा प्रतिवासुदेव नौ।

त्रेषठ शलाका-पुरुषों[2] की सूची में भारतभूमि के ज्ञात-अज्ञात पौराणिक पुरुषों के नाम हैं। इसमें जैन परम्परा में मान्य चौबीस तीर्थंकरों के अतिरिक्त जो अधिक ज्ञात नाम हैं, वे हैं—भरत, राम, लक्ष्मण, रावण, कृष्ण, बलराम, तथा जरासन्ध। इसमें भरत का नाम चक्रवर्ती शलाका-पुरुषों में है।

वासुदेव, प्रतिवासुदेव तथा बलभद्र—इन तीन कोटि के शलाका-पुरुषों की निश्चित संख्या नौ-नौ है। इसमें वासुदेव और प्रतिवासुदेव परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। बलभद्र वासुदेव का अग्रज होता है। त्रेषठ शलाकापुरुषों की गणना में कृष्ण नवम वासुदेव हैं, उनका प्रतिद्वन्द्वी जरासन्ध नवम प्रतिवासुदेव है तथा बलराम नवम बलभद्र हैं।

कृष्ण : शलाकापुरुष वासुदेव

इस प्रकार जैन मान्यता में कृष्ण शलाका-पुरुष वासुदेव हैं। परम्परानुसार वासुदेव अर्द्ध-चक्रवर्ती राजा होता है। जैन ग्रन्थ 'तिलोयपण्णत्ति' में भारतभूमि के छह खण्ड कहे गये हैं। विन्ध्याचल से ऊपर उत्तर भारत के तीन खण्ड तथा दक्षिण भारत के तीन खण्ड।[3] जिस शक्तिशाली राजा का भरतक्षेत्र के सम्पूर्ण छह खण्डों पर प्रभाव व प्रभुत्व हो, वह चक्रवर्ती शलाका-पुरुष कहा गया है तथा जिसका आधे भरत क्षेत्र पर अर्थात् तीन खण्डों पर प्रभाव व प्रभुत्व हो वह अर्द्ध-चक्रवर्ती अर्थात् वासुदेव शलाका-पुरुष कहा गया है। प्रतिवासुदेव भी वासुदेव के समान ही प्रभाव व प्रभुत्व सम्पन्न होता है, परन्तु प्रतिद्वन्द्विता में वह वासुदेव से पराभूत होता है।

उक्त धारणा के अनुसार जैन साहित्य के कृष्ण शलाका-पुरुष वासुदेव हैं। वे इस रूप में अर्द्ध भरतक्षेत्र के स्वामी, अर्द्ध-चक्रवर्ती अथवा त्रिखण्डाधिपति हैं। उन्हें द्वारिका सहित सम्पूर्ण दक्षिण भरतक्षेत्र का अधिपति कहा गया है। प्राकृत ग्रन्थ 'निरयावलिका' का तत्सम्बधी एक सूत्र यहाँ उद्धृत है—

"तत्थणं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था जाव पसासे माणे विहरई। अण्णेसि च वहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पभिईणं वैयड्ढगिरि सागर-मेरागस्स दाहिणड्ढ भरहस्य आहे वच्चं जाव विहरइ।"

अर्थात् द्वारवती नगरी में कृष्ण नाम के वासुदेव राजा थे। वे उस नगरी का यावत् शासन करते हुए विचरते थे। अनेक अधीनस्थ राजाओं, ऐश्वर्यवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नागरिकों सहित वैताढ्यगिरि से सागरपर्यन्त दक्षिण भरतक्षेत्र उनके प्रभाव में था।

वासुदेव और प्रतिवासुदेव

इस विवरण के आधार पर हमें यह स्पष्ट होता है कि कृष्ण एक महान् शक्तिशाली व वीर राजपुरुष थे। उनकी 'वासुदेव' संज्ञा जैन धारणानुसार उनके श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप की द्योतक थी। जितने शक्तिशाली व प्रभाव सम्पन्न राजा कृष्ण थे, लगभग वही स्थिति जरासन्ध की भी थी। इसलिए जैन मान्यता में जरासन्ध को प्रतिवासुदेव कहा गया है। जैन पौराणिक कृतियों में वर्णन है कि कृष्ण और जरासन्ध में संघर्ष होता है। इस संघर्ष में कृष्ण जरासन्ध का संहार करते हैं और इसके फलस्वरूप 'वासुदेव राजा' के रूप में उनका अभिनन्दन किया जाता है। आचार्य जिनसेन अपने 'हरिवंशपुराण' (सर्ग ५३ श्लोक १७-१८) में इस तथ्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टबम्मरे।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दनः॥
निहतश्च जरासन्धस्तच्चक्रेणैव संयुगे।
प्रतिशत्रुर्गुणद्वेषी वासुदेवेन चक्रिणा॥

वैष्णव पुराणों का पौण्ड्रक-प्रसंग

जैन-साहित्य की उक्त अवधारणा के सन्दर्भ में तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में आये कृष्ण-पौण्ड्रक संघर्ष के प्रसंग को उद्धृत करना चाहते हैं।[४] प्रसंग संक्षेप में इस प्रकार है—

एक समय बलराम जी द्वारिका से व्रज आये। इसी समय करुप देश के राजा पौण्ड्रक ने कृष्ण के पास अपना दूत भेजा। दूत ने द्वारिका आकर भरी सभा में अपने राजा का यह सन्देश कहा—"हे कृष्ण! तुमने झूठ ही अपना नाम वासुदेव रख लिया है। अब तुम उसे छोड़ दो, क्योंकि वासुदेव मैं हूँ। या तो तुम इस तथ्य को स्वीकार कर मेरी शरण में आ जाओ या मुझसे युद्ध करो।"

पौण्ड्रक की डींगभरी बातें सुनकर सभी सभासद हँसने लगे। कृष्ण ने दूत से कहा, "तुम अपने राजा को सूचित कर देना कि मैं उससे तथा उसे बहकाने वाले उसके साथियों से शीघ्र ही रणभूमि में मिलूँगा।"

कृष्ण ने जिस समय यह संदेश भेजा, उस समय पौण्ड्रक काशी में था। कृष्ण ने बिना अवसर खोये तुरन्त काशी पर आक्रमण कर दिया। महारथी पौण्ड्रक भी युद्ध के लिए तत्पर था। उसके साथ उसके अन्य मित्र राजा भी युद्ध-भूमि में सेना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित आये। पौण्ड्रक के हाथों में कृष्ण के समान ही शंख, चक्र, गदा तथा धनुष आदि सुशोभित हो रहे थे। उसकी ध्वजा पर भी कृष्ण की तरह गरुड़ का चिह्न था।

दोनों में भयानक युद्ध हुआ। युद्ध में कृष्ण ने पौण्ड्रक को मार डाला। और इस प्रकार कृष्ण ही वासुदेव के रूप में मान्य हुए।

वासुदेव : विरुद स्वरूप

जैन-साहित्य में उपलब्ध कृष्ण-कथा में कृष्ण-जरासन्ध संघर्ष की स्थिति भी ठीक कृष्ण-पौण्ड्रक के उक्त प्रसंग जैसी ही है। जब जरासन्ध को कृष्ण व यादवों की शक्ति तथा प्रभाव की जानकारी मिली तो उसने दूत भेजकर यह संदेश कहा, "या तो मेरी अधीनता स्वीकार करो या युद्ध-भूमि में सामना करने को तैयार हो जाओ।" इस संदेश के उत्तर में कृष्ण यादवगण की सेना लेकर जरासन्ध से संघर्ष करने के लिए चल पड़े। युद्ध-भूमि में दोनों महान् राजाओं में जो संघर्ष हुआ। उसमें कृष्ण ने जरासन्ध का वध किया तथा वे विजयी हुए। विजयी होने पर 'वासुदेव' रूप में देवताओं ने उनका अभिनन्दन किया।

भागवत के कृष्ण-पौण्ड्रक प्रसंग तथा जैन पौराणिक कृतियों के कृष्ण-जरासंघ संघर्ष के प्रसंग में अद्भुत साम्य है। दोनों ही प्रसंगों में दो समान शक्तिशाली राजाओं का संघर्ष एक-दूसरे पर प्रभुत्व पाने के लिए है। इस प्रभुत्व की इच्छा के साथ 'वासुदेवत्व' की संज्ञा अद्भुत रूप से जुड़ी हुई है। पौण्ड्रक कहता हैं कि वासुदेव वह है जबकि कृष्ण उसको मारकर वासुदेव रूप में मान्य रहते हैं। जैन कथा-नायक कृष्ण जब युद्धभूमि में जरासन्ध का वध कर देते हैं तभी वे वासुदेव रूप में मान्य होते हैं।

श्रीमद्भागवत और जिनसेन कृत हरिवंश-पुराण के उक्त प्रसंग एक नयी विचारदृष्टि हमें देते हैं। क्या 'वासुदेव' तत्कालीन भारत में कोई विरुद नाम था? जिस प्रकार ज्ञात इतिहास में चक्रवर्ती, विक्रमादित्य आदि विरुद नाम रहे हैं, क्या 'वासुदेव' भी इनकी तरह राजा की श्रेष्ठता और प्रभुता का प्रतीक था? इस प्रश्न का उत्तर वासुदेवत्व के लिए हुए कृष्ण-पौण्ड्रक संघर्ष अथवा जैन-कथा के कृष्ण-जरासन्ध संघर्ष में निहित है।

महाभारत में कृष्ण का वासुदेव स्वरूप

वस्तुतः कृष्ण का 'वासुदेवत्व' उनके वीरत्व का द्योतक है। उक्त प्रसंगों से यही निष्कर्ष ध्वनित होता है। कृष्ण की अप्रतिम वीरता व शक्तिसम्पन्नता को जैन-परम्परा ने शलाकापुरुष वासुदेव के रूप में मान्यता देकर ग्रहण किया जबकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैष्णव परम्परा ने अपनी अवतारवाद की भावना के अनुकूल उन्हें भगवान् विष्णु के अवतार, स्वयं भगवान् वासुदेव के रूप में माना तथा स्वीकार किया। वासुदेव रूप में कृष्ण का मुख्य कार्य पृथ्वी पर उत्पन्न असुरों का संहार करना है। महाभारतकार ने (भीष्मपर्व ६६.८ में) लिखा है—

मानुषं लोकमतिष्ठ् वासुदेव इति श्रुतः।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्य महीतले।

दुष्ट और अन्यायी राजाओं के संहार में कृष्ण ने जिस अप्रतिम वीरता और साहस का प्रदर्शन किया, उसका यशोगान दोनों ही परम्पराओं के साहित्य में प्रमुखता से हुआ है। महाभारत में कृष्ण के वीर स्वरूप का वर्णन ही प्रमुख है। उनके वल, पराक्रम और शक्ति-सामर्थ्य का वर्णन करते हुए विदुर जी दुर्योधन से कहते हैं :[५]

"सोमद्वार में द्विविद नाम से प्रसिद्ध वानरराज रहता था। उसने एक दिन पत्थरों की भारी वर्षा करके कृष्ण को आच्छादित कर दिया। अनेक पराक्रमपूर्ण उपायों से उसने कृष्ण को पकड़ना चाहा, परन्तु नहीं पकड़ सका। प्राग्जोतिषपुर में नरकासुर ने कृष्ण को वन्दी वनाने की चेष्टा की परन्तु वह भी सफल न हो सका। कृष्ण ने उस नरकासुर को मारकर उसके यहाँ वन्दी सहस्रों राजकन्याओं का उद्धार किया। निर्मोचन में छह हज़ार बड़े-बड़े असुरों को इन्होंने पाशों में बाँध लिया। वे असुर भी जिन्हें बन्दी नहीं बना सके उन कृष्ण को तुम बलपूर्वक वश में करना चाहते हो?

"इन्होंने वाल्यावस्था में पूतना का वध किया था और गायों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को धारण किया था। अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणूर, अश्वराज और कंस भी कृष्ण के हाथ से मारे गये थे। जरासन्ध, दन्तवक्र, शिशुपाल और वाणासुर भी इन्हीं के हाथ से मारे गये हैं तथा अन्य बहुत से राजाओं का भी इन्होंने संहार किया है। अमित तेजस्वी कृष्ण ने वरुण पर विजय पायी है तथा अग्निदेव को भी पराजित किया है। पारिजात-हरण करते समय इन्होंने साक्षात् शचीपति इन्द्र को भी जीता है। इन्होंने एकार्णव के जल में सोते समय मधु और कैटभ नामक दैत्यों को मारा था और दूसरा शरीर धारण कर हयग्रीव नामक राक्षस का भी इन्होंने वध किया था। ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है। सबके पुरुषार्थ के कारण भी ये ही हैं। ये जो भी चाहें अनायास ही कर सकते हैं। अपनी महिमा से कभी च्युत न होनेवाले इन गोविन्द का पराक्रम भयंकर है। तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते। ये क्रोध में भरे हुए विषधर के समान भयानक हैं। ये सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित एवं तेज की राशि हैं। सहज ही महान् पराक्रम करनेवाले महाबाहु कृष्ण का तिरस्कार करने पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम अपने मन्त्रियों सहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंगा अग्नि में पड़कर भस्म हो जाता है।"

इस समस्त वर्णन में कृष्ण की अपराजेय वीरता, उनके महान् पराक्रम तथा विशिष्ट तेजस्विता का निरूपण हुआ है।

जैन परम्परा में वासुदेव की विशिष्टता

जैनागम ग्रन्थ 'समवायांग सूत्र में' शलाकापुरुष वासुदेव का वैशिष्ट्य इन शब्दों में वर्णित है:[६]

ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, चमकीले शरीरवाले, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन, स्वरूपवान्, सुन्दर स्वभाववाले, सर्वप्रिय, स्वाभाविक बली, आहत न होनेवाले, अपराजित, शत्रु का मर्दन करनेवाले, दयालु, अमत्सर, अक्रोध, अचपल, परिमित तथा प्रिय संभाषण करनेवाले, गंभीर, मधुर व सत्य भाषण करनेवाले, शरणागत वत्सल, लक्षण, व्यंजन व गुणों से युक्त, मान-उपमान प्रमाण से पूर्ण, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन, महान् धनुर्धारी, विशिष्ट बल-धारक, दुर्धर धनुर्धारी, धीर पुरुष, युद्ध में कीर्ति पानेवाले, उच्च कुलोत्पन्न, भयं-कर युद्ध को भी विघटित कर सकनेवाले, आधे भरतक्षेत्र के स्वामी, सौम्य राजवंश के तिलक, अजित तथा अजित रथी, दीप्त तेज वाले, प्रवीर पुरुष, नरसिंह, नरपति, नरेन्द्र, नरवृषभ, देवराज इन्द्र के समान राज्यलक्ष्मी के तेज से दीप्त आदि-आदि।

उक्त गुण-वर्णन में भी मूलतः कृष्ण की वीरता, तेजस्विता, शक्ति-सम्पन्नता तथा उनके श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप का ही उल्लेख है।

इस समस्त विवरण के आधार पर हम कहना चाहते हैं कि जैन मान्यता अनुसार कृष्ण शलाकापुरुष वासुदेव हैं और इस रूप में वे वीर श्रेष्ठ राजपुरुष तथा आधे भरतक्षेत्र के शक्तिशाली अधिपति मान्य हैं। समस्त जैन साहित्य में उनका व्यक्तित्व वर्णन इस मान्यता के अनुकूल है। जैन-परम्परा में उनकी इस मान्यता के मूल में जो तथ्य हैं, उनकी झलक महाभारत व श्रीमद्भागवत के प्रसंगों में भी द्रष्टव्य है।

कृष्ण वासुदेव और तीर्थंकर अरिष्टनेमि

जैन परम्परागत साहित्य में कृष्ण वासुदेव के सम्बन्ध में एक और विशिष्ट तथ्य का वर्णन है। वह यह कि कृष्ण बाइसवें जैन तीर्थंकर अर्हत् अरिष्टनेमि के न केवल समकालीन थे, अपितु उनके चचेरे भाई भी थे। आगमिक कृतियों में ऐसे अनेक प्रसंगों का वर्णन है जब अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारिका जाते तथा कृष्ण सदल बल उनके उपदेश श्रवण को जाते।[७]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरिष्टनेमि और कृष्ण वासुदेव का जो पारिवारिक वंश-वृक्ष जैन परम्परा में उपलब्ध है, वह इस प्रकार है—

- यदु
  - सौरी
    - अन्धक वृष्णि
      - समुद्रविजय
        - अरिष्टनेमि
      - अक्षोभ
      - स्तिमित
      - सागर
      - हिमवान्
      - अचल
      - धरण
      - पूरण
      - अभिचन्द
      - वसुदेव
        - कृष्ण
    - भोजक वृष्णि
  - वीर

उक्त वंशानुक्रम के अनुसार यदुवंशी राजा अन्धक के दस पुत्र थे। जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय के पुत्र अरिष्टनेमि थे तथा सबसे छोटे वसुदेव के पुत्र कृष्ण थे।

जैन-कृतियों में उपलब्ध वर्णन के अनुसार कृष्ण आयु में अरिष्टनेमि से बड़े थे। कृष्ण ने ही भोजवंश की कुमारी राजीमती से अरिष्टनेमि का विवाह सम्बन्ध निश्चित कराया। इस मंगल महोत्सव के अवसर पर घटित एक घटना ने अरिष्टनेमि की जीवनचर्या ही वदल दी। जव अरिष्टनेमि वस्त्राभूषणों से अलंकृत वैवाहिक अनुष्ठान के लिए अपनी वारात के साथ जा रहे थे तो एक बाड़े में उन्होंने वारात भोज के लिए एकत्रित अनेक पशु-पक्षियों को देखा। उनकी हिंसा की कल्पना मात्र ने उनके हृदय में स्थित वैराग्य भाव को उभार दिया। उन्हें विरक्ति हो गयी। वैवाहिक वस्त्राभूषणों का त्याग कर वे वहाँ से लौट चले। सभी लोगों ने समझाने का अथक प्रयत्न किया, किन्तु उनका जन्मना विरक्त मन सांसारिक माया-मोह की ओर आकृष्ट नहीं किया जा सका। वे विरक्त हो गृह त्याग कर चल दिये। गिरिनार की पहाड़ियों में जाकर उन्होंने साधना की और कैवल्य प्राप्त किया। अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने लोक में यात्राएँ कीं और जन-जन को उपदेश दिये। इस प्रक्रिया में यह बहुत स्वाभाविक है कि उनके कुल के लोग तथा द्वारिका के प्रजाजन उनके धर्म की ओर आकृष्ट हुए। स्वयं द्वारिकाधीश कृष्ण का अपने कुल के इस विलक्षण त्यागी राजकुमार के धर्म की ओर आकृष्ट होना अत्यन्त स्वाभाविक था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार कृष्ण का तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्म सभाओं में उपस्थित होना, उनसे धार्मिक चर्चा करना तथा शंका-समाधान करना बहुत सहज रूप से जैन परम्परागत साहित्य में वर्णित है। कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के इस पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में महाभारत तथा समस्त वैष्णव परम्परागत साहित्य पूर्णतः मौन है। यह एक अद्‌भुत स्थिति है कि एक तरफ तो जैन-परम्परागत साहित्य की सुदीर्घ कालावधि में कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के इन सम्बन्धों का वर्णन करनेवाली अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं, वहीं समकालीन वैष्णव परम्परागत साहित्य में इस सम्बन्ध में किसी भी कृति में कोई उल्लेख तक नहीं है।

छान्दोग्य उपनिषद् में घोर आंगिरस का उपदेश

उपनिषदों में पर्याप्त प्राचीन मानी जानेवाली कृति छान्दोग्य में देवकी-पुत्र कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु घोर आंगिरस का उल्लेख है। इस उपनिषद् के अध्याय तीन, खण्ड १७ में आत्म-यज्ञोपासना का वर्णन है। इस यज्ञ की दक्षिणा के रूप में तप, दान, आर्जव (सरलता), अहिंसा और सत्य वचन का उल्लेख है।[८] यह यज्ञ-दर्शन ऋषि घोर आंगिरस ने देवकीपुत्र कृष्ण को सुनाया। इस उपदेश को सुनकर कृष्ण की अन्य विद्याओं के प्रति तृष्णा नहीं रही अर्थात् उनकी जिज्ञासा शान्त हो गयी और उन्हें कुछ जानना शेष नहीं रहा। घोर आंगिरस ने कृष्ण को यह भी उपदेश दिया कि अन्तकाल में उसे तीन मन्त्रों का जप करना चाहिए—(१) तू अक्षित (अक्षय) है, (२) तू अच्युत (अविनाशी) है तथा (३) तू अति सूक्ष्म प्राण है।[९]

छान्दोग्य के इस उल्लेख से स्पष्ट है कि आंगिरस ने कृष्ण को आत्मवादी विचारधारा का उपदेश दिया। इस आत्मयज्ञ के उपकरण के रूप में तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यवचन का उल्लेख है। स्पष्ट ही यह विचारधारा वैदिक यज्ञोपासना से भिन्न प्रकार की थी। वैदिक परम्परागत यज्ञोपासना के बारे में यह मान्य तथ्य है कि वह हिंसा व कर्मकाण्ड प्रधान थी। आत्मयज्ञ की इस धारणा में तप, त्याग, हृदय की सरलता, सत्यवचन व अहिंसा आदि श्रेष्ठ गुणों के अंगीकार द्वारा आत्मशुद्धि मुख्य बात थी। इस प्रकार आंगिरस द्वारा उपदेशित आत्म यज्ञोपासना अहिंसाप्रधान थी तथा तप-त्याग आदि को उसमें महत्त्व दिया गया था।

जैन धर्म व दर्शन की समस्त परम्परा भी इन्हीं विचारों पर आधारित है। आत्मा की श्रेष्ठता यहाँ मान्य है। अहिंसा को यह परम्परा परम धर्म मानती है। तप, त्याग, ऋजुता और सत्य का आचरण इस धर्म के लक्षण हैं। इस प्रकार घोर आंगिरस द्वारा देवकीपुत्र कृष्ण को दिया गया उपदेश जहाँ जैन-परम्परा व विचारधारा के निकट है, वहीं वैदिक परम्परा तथा विचारधारा के विपरीत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० राधाकृष्णन ने लिखा है : "कृष्ण वैदिक धर्म के याजकवाद का विरोधी थे और उन सिद्धान्तों का प्रचार करते थे जो उन्होंने घोर आंगिरस से सीखे थे।"[10]

अरिष्टनेमि और आंगिरस

घोर ऋषि की शिक्षाओं का जैन-परम्परा से साम्य विचारणीय है। पुनः जैन परम्परागत साहित्य में वर्णित कृष्ण तथा तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्म-चर्चाओं में कृष्ण का उपस्थित होना इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लगता है। यह बहुत स्वाभाविक है कि कृष्ण अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अपने ही कुल के तपस्वी महापुरुष अरिष्टनेमि के अहिंसा तथा आत्मा की श्रेष्ठता व अमरता के विचारों से प्रभावित हुए थे। इस आधार पर ऐसी संभावना बनती है कि छान्दोग्य में वर्णित कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु घोर आंगरिस तथा जैन परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अर्हत् अरिष्टनेमि अभिन्न व्यक्तित्व हैं।

निष्कर्ष

जैन साहित्य में कृष्ण के सन्दर्भ में दो महत्त्वपूर्ण आधारभूत तथ्य हैं। प्रथम, कृष्ण द्वारिका सहित आधे भरत क्षेत्र पर प्रभाव व प्रभुत्व रखनेवाले शक्तिशाली वासुदेव राजा थे। वे वीरता और अद्भुत पराक्रम के अतिशय से सम्पन्न विशिष्ट शलाकापुरुष थे। द्वितीय, वे बाइसवें जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के न केवल समकालीन थे अपितु उनके चचेरे भाई भी थे। वे उनके आध्यात्मिक विचारों से प्रभावित होनेवाले प्रमुख राजपुरुष थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णचरित सम्बन्धी कृतियाँ

जैन साहित्य की परम्परा

जैन-साहित्य परम्परागत रूप में तीर्थंकर महावीर (ई०पू० सन् ५९९-५२७) की देशना से सम्बद्ध है। मान्यतानुसार महावीर के प्रमुख शिष्य (गणधर) गौतम इन्द्रभूति ने जिनवाणी को बारह अंग ग्रन्थों तथा चौदह पूर्वों के रूप में संकलित व व्यवस्थित किया था। अंग ग्रन्थों तथा पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं—

अंग ग्रन्थ—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक दशा, विपाकसूत्र, प्रश्नव्याकरण और दृष्टिवाद।

चौदहपूर्व ग्रन्थ—उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञान-प्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, अवंध्य, प्राणायु, क्रियाविशाल, लोकबिन्दुसार।

जो साधु इस समस्त वाणी का अवधारण कर सका, वह 'श्रुतकेवली' कहलाया। 'श्रुतकेवली' शब्द से यह ध्वनित है कि जिनवाणी प्रारम्भ में श्रुतरूप में ही सुरक्षित रही। जिस प्रकार वेद-वेदांग बहुत समय तक श्रुतरूप में रहे, लगभग वही स्थिति प्रारम्भ में जैन साहित्य की भी रही। श्रुतकेवली पाँच हुए जिनमें अन्तिम भद्रबाहु थे।[1]

भद्रबाहु के समय (ई० पू० ३२५) मगध में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। इस समय भद्रबाहु अपने साधु संघ के साथ मगध से चले गये थे। दुर्भिक्ष की इस लम्बी अवधि में सूत्र के लुप्त होते जाने का ख़तरा उत्पन्न हो गया। अतः दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु स्वामी की अनुपस्थिति में, पाटलीपुत्र नगर में मुनि स्थूलभद्र की अध्यक्षता में श्रमण संघ आयोजित किया गया और इसमें लुप्त होते जा रहे सूत्रों को व्यवस्थित व संकलित करने का प्रयास किया गया।[2] इस प्रयास में प्रथम ग्यारह अंग ग्रन्थ ही संकलित किये जा सके। बारहवें अंग ग्रन्थ दृष्टि-वाद तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान निःशेष हो गया। जो अंग ग्रन्थ संकलित किये जा सके, उनकी प्रामाणिकता को लेकर भी मतभेद हो गया। भद्रबाहु स्वामी के साथ मगध से जो साधु-संघ चला गया उसने इसे प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार सूत्र की प्रामाणिकता को लेकर महावीर का अनुयायी साधु-संघ दो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्गों में विभाजित हो गया। एक वर्ग (श्वेताम्बर सम्प्रदाय) उपलब्ध ग्यारह अंग ग्रन्थों को प्रामाणिक स्वीकार करता है जबकि दूसरा वर्ग (दिगम्बर सम्प्रदाय) समस्त आगम-साहित्य को विच्छिन्न मानता है।

(i) आगम साहित्य

ऊपर लिखा जा चुका है कि जैनियों का दिगम्बर सम्प्रदाय मूल आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता है। यह सम्प्रदाय आगमों के आधार पर रचित विभिन्न आचार्यों के कतिपय ग्रन्थों को ही आगम साहित्य के रूप में मान्यता देता है।[3] ये ग्रन्थ हैं—

(क) षट्खण्डागम—इसकी रचना वीर-निर्वाण की सातवीं शताब्दी (ई० पू० दूसरी शताब्दी) में आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य भूतबलि और पुष्पदन्त ने प्राकृत भाषा में की।

(ख) कषाय पाहुड—इसकी रचना आचार्य गुणधर ने इसी समय के लग-भग की।

(ग) महाबन्ध—यह षट्खण्डागम का ही अन्तिम खण्ड है जिसकी रचना आचार्य भूतबलि ने की।

(घ) धवला तथा जयधवला—प्रथम दो ग्रन्थ 'क' तथा 'ख' पर टीकाएँ हैं। इनके टीकाकार वीरसेनाचार्य हैं।

(ङ) ईसा की प्रथम शती में कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मूल आगमों के आशय को ध्यान में रख कर कई ग्रन्थों की रचना की। इनमें प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय तथा विभिन्न पाहुड-ग्रन्थ हैं। इनके आचार-पाहुड, सुत्तपाहुड, स्थानपाहुड, समवायपाहुड आदि के नामकरण से क्रमशः आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग आदि अंग-ग्रन्थों का आभास होता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य आगमिक साहित्य का वर्तमान में उपलब्ध संकलन आचार्य देवगणि की अध्यक्षता में आयोजित श्रमण संघ (ई० सन् ४५३-४६६, स्थान बलभीनगर, काठियावाड़, गुजरात) द्वारा किया गया था।[4] इस प्रकार श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा प्रामाणिक स्वीकार किया जानेवाला आगमिक साहित्य महावीर निर्वाण के लगभग एक हज़ार वर्ष बाद संकलित हुआ था।

मूल आगम-साहित्य तो ग्यारह अंगों के रूप में ही अवशिष्ट समझा जा सकता है, परन्तु मूल आगमों के आशय को ध्यान में रखकर अनेक आचार्यों ने जो ग्रन्थ लिखे तथा टीकाएँ लिखीं वे सब आगमिक साहित्य में सम्मिलत की जाती हैं। इस तरह महावीर-निर्वाण के पश्चात् आगमिक साहित्यकी वृद्धि होती रही। बलभी में आयोजित श्रमण संघ के समय आगमिक साहित्य के ग्रन्थों की संख्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौरासी तक पहुँच गयी थी। नन्दीसूत्र में इनके नाम इस प्रकार हैं।[५]

अंग ग्रन्थ—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, अंतकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक-दशा, प्रश्न-व्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद (विलुप्त)।

उपांग—औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रज्ञप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, निरयावलिका (कल्पिका), कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा।

मूलसूत्र—दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वार-सूत्र और आवश्यकसूत्र।

छेदसूत्र—वृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुत-स्कन्ध, निशीथ, महानिशीथ, पंचकल्प।

प्रकीर्णक—चतुःशरण, आतुर प्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, संस्तारक, तंदुलवैचरिक, चन्द्रवैद्यक, देवेन्द्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, अजीवकल्प, गच्छाचार, मरणसमाधि, सिद्धप्रामृत, तीर्थोद्‌गार, आराधनापताका, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या, तिथि-प्रकीर्णक, पिंडनिर्युक्ति, सारावली, पर्यन्तसाधना, जीव-विभक्त, कवच, योनिप्राभृत, वृद्ध चतुःशरण, जम्बूपयन्ना।

चूलिका सूत्र—अंगचूलिका और बंगचूलिका।

निर्युक्तियाँ—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, वृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुत-स्कन्ध, कल्पसूत्र, पिण्ड, ओघ और संसक्त।

शेषसूत्र—कल्पसूत्र, यतिजीत कल्प, श्राद्धजीत कल्प, पाक्षिक सूत्र, खामणा-सूत्र, वंदित्तुसूत्र और ऋषिभासित सूत्र।

वर्तमान स्थिति यह है कि श्वेताम्बर जैनों के विविध सम्प्रदायों में भी आगमिक-साहित्य की प्रामाणिकता को लेकर मतभेद हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक इनमें से पैंतालिस ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं जबकि श्वेताम्बर स्थानकवासी तथा तेरापन्थी मात्र बत्तीस ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं। इनकी प्रामाणिकता सम्बन्धी मान्यताएँ निम्नप्रकार हैं—

सम्प्रदाय	अंग	उपांग	मूल सूत्र	छेदसूत्र	आवश्यक	प्रकीर्णक	चूलिका सूत्र	योग
श्वे०मूर्तिपूजक	११	१२	४	६	—	१०	२	= ४५
श्वे०स्थानकवासी एवं तेरापंथी	११	१२	४	४	१			= ३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(II) आगमेतर साहित्य

आगमेतर जैन-साहित्य ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों से लिखा जाने लगा था। यह साहित्य अनुयोग नामक एक विशेष पद्धति के रूप में लिखना प्रारम्भ हुआ था जिसके प्रणेता आचार्य आर्यरक्षित माने जाते हैं। अनुयोग-पद्धति के चार रूप थे (१) चरण-करणानुयोग, (२) धर्मकथानुयोग, (३) गणितानुयोग और (४) द्रव्यानुयोग।

चरण-करणानुयोग में जीवन के विशुद्ध आचार, धर्मकथानुयोग में विशुद्ध आचार का पालन करनेवालों की जीवन-कथा, गणितानुयोग में विशुद्ध आचार का पालन करनेवालों के अनेक भूगोल-खगोल के स्थान तथा द्रव्यानुयोग में विशुद्ध जीवन जीनेवालों की तात्त्विक चिन्तन का स्वरूप-वर्णन होता था।[६]

अनुयोग पद्धति का मूल स्वरूप बारहवें अंगग्रन्थ 'दृष्टिवाद' में उपलब्ध था। दृष्टिवाद पाँच भागों में विभक्त था—(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वगत, (४) अनुयोग तथा (५) चूलिका। चतुर्थ भाग अनुयोग की विषयवस्तु भी मूलतः दो उपविभागों में विभक्त थी—

(अ) मूल प्रथमानुयोग—इसमें अरहन्तों के पूर्वभव, गर्भ, जन्म तथा ज्ञान और निर्वाण का तथा उनके शिष्य समुदाय का वर्णन था।

(ब) गण्डिकानुयोग—इसमें कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि शलाकापुरुषों के चरित का वर्णन था।[७]

'दृष्टिवाद' सम्पूर्ण ही विच्छिन्न हो गया था अतः उसका विभाग अनुयोग भी विच्छिन्न माना गया। आचार्य आर्यरक्षित ने अनुयोग की विषय सामग्री का 'धर्मकथानुयोग' नाम से उद्धार किया। जब यह भी विच्छिन्न होने लगा तो आचार्य कालक ने ई०सन् की प्रथम शताब्दी में जैन परम्परागत कथाओं के संग्रह रूप में 'प्रथमनुयोग' नाम से इसका पुनः उद्धार किया। आज प्रथमानुयोग भी उपललब्ध नहीं है। चरित साहित्य से सम्बन्धित जो प्राचीन ग्रन्थ हैं; यथा-विमलसूरि कृत 'पउमचरिय', जिनसेन कृत 'हरिवंशपुराण', जिनसेनगुणभद्र कृत महापुराण, शीलांक रचित 'चउप्पन-महापुरिस-चरित' तथा आचार्य हेमचन्द्र कृत 'त्रिपष्टिशलाका-पुरुष-चरित' आदि ग्रन्थों में ग्रन्थकारों ने इन्हें प्रथमानुयोग विभाग की रचना कहा है।[८]

उक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में उपलब्ध विशाल जैन-चरित साहित्य का आधार धर्मकथानुयोग की विषयवस्तु है। और धर्मकथानुयोग की विषयवस्तु भी मूलतः बारहवें अंगग्रन्थ दृष्टिवाद के चतुर्थ विभाग अनुयोग पर आधारित थी। अतः समस्त जैन साहित्य परम्परागत रूप में तीर्थंकर महावीर की देशना से सम्बद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगम-साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की प्रवृत्तियाँ

आगम साहित्य प्राकृत भाषा में निबद्ध है। यह साहित्य मूलतः सिद्धान्त निरूपण से सम्बन्धित है। सिद्धान्त निरूपण की एक शैली के रूप में कथा-कहानियों तथा व्यक्ति-चरितों का उपयोग हुआ है। कृष्ण-चरित के विविध प्रसंगों का सन्दर्भानुसार इसी दृष्टि से विभिन्न आगमिक कृतियों में वर्णन है। इस वर्णन में एक श्रेष्ठ पुरुष एवं द्वारिका के महान् शक्ति-सम्पन्न, ऐश्वर्यवान् राजा के रूप में कृष्ण का यशोगान हुआ है। शलाका (उत्तम) पुरुष वासुदेव के रूप में उनकी विशेषताओं, उत्तम लक्षणों, उनके विशिष्ट व्यक्ति-स्वरूप का चित्रण है। कृष्ण-कथा के अवान्तर प्रसंगों एवं कृष्ण के जीवन की घटनाओं का अलग-अलग सन्दर्भों में वर्णन हुआ है। कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमिक कृतियों का एवं उनमें कृष्णचरित वर्णन के स्वरूप का परिचय आगे दिया जा रहा है।

कृष्ण-चरित सम्बन्धी आगमिक कृतियाँ

समवायांगसूत्र—यह चतुर्थ अंग ग्रन्थ है।[९] जीव, अजीव आदि पदार्थ समूह की गणना इसका प्रतिपाद्य है। इसमें एक अध्ययन तथा एक श्रुतस्कन्ध है। इसमें शलाकापुरुषों का नामोल्लेख तथा उनकी विशेषताओं का वर्णन है। सूत्र २०७ का प्रतिपाद्य बलदेव तथा वासुदेव का वर्णन है। वासुदेव के रूप में कृष्ण की विशेषताओं, उनके व्यक्तित्व, चारित्रिक गुण, लक्षण, उनका वेश, अस्त्र-शस्त्र, ध्वज आदि का विवरण इस सूत्र में दिया गया है।

ज्ञातृधर्म-कथा—यह छठा अंग ग्रन्थ है।[१०] इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले में १९ अध्ययन हैं तथा दूसरे में १० अध्ययन हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलहवें अध्ययन में द्रौपदी-चरित वर्णित है। इस प्रसंग में कृष्ण वासुदेव का श्रेष्ठ राजपुरुष के रूप में वर्णन हुआ है, जो अपने समय के राजसमाज में पूजनीय थे तथा अत्यधिक प्रभावशाली व महान् बलशाली थे। सूत्र २९ में पाण्डवों द्वारा कृष्ण को स्वामी सम्बोधन किया गया है। अर्द्धचक्रवर्ती वासुदेव राजा के रूप में कृष्ण का वर्णन इस सूत्र में विस्तारपूर्वक निरूपित है।

दूसरे श्रुतस्कन्ध के पाँचवें अध्ययन में द्वारिका के थावच्चापुत्र की अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने के प्रसंग का वर्णन है। इस प्रसंग में द्वारावती नगरी का वर्णन, वहाँ के श्रेष्ठ वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन, उनके परिवार, रानियों, पुत्रादिकों, वीरों, सेनापतियों तथा अन्य प्रजाजन का नामोल्लेख तथा वर्णन हुआ है। अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन, कृष्ण का उनकी उपदेश-सभा में जाना तथा थावच्चापुत्र की प्रव्रज्या का वर्णन है। सूत्र १६ में उल्लेख है कि स्वयं कृष्ण थावच्चापुत्र के साथ अर्हत् अरिष्टनेमि के पास गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तकृद्दशा—यह आठवाँ अंग ग्रन्थ है।[11] इसका प्रतिपाद्य उन महान आत्माओं का चरित-वर्णन है जिन्होंने अपने संयम और तप द्वारा अन्तिम अवस्था में समस्त कर्मों का क्षय कर उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया। इसमें आठ वर्ग हैं तथा नव्बे अध्ययन हैं। इसके वर्ग १, ३, ४, ५ में कृष्ण वासुदेव तथा उनकी रानियों, पुत्रों आदि का वर्णन है। इसी क्रम में द्वारावती नगरी का वर्णन, द्वारावती के शक्तिशाली राजा के रूप में कृष्ण का वर्णन, कृष्ण की रानियों, पुत्रों, प्रपौत्रों, पुत्रवधुओं आदि का वर्णन; वहाँ की सेना, सेनापतियों, ऐश्वर्यवान् नागरिकों, सुभट वीरों आदि का उल्लेख; कृष्ण के माता-पिता, कृष्ण की परदुःख-कातरता, अर्हत् अरिष्टनेमि के भविष्य-कथन के रूप में द्वारावती नगरी का विनाश, कृष्ण का परलोक-गमन तथा भावि जन्म आदि का वर्णन है।

ग्रन्थ के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारिका के राजा अन्धकवृष्णि तथा रानी धारिणी के पुत्र गौतमकुमार का, तथा तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन में कृष्ण के सहोदर कुमार गजसुकुमाल के चरित का वर्णन है।

प्रश्नव्याकरण—यह दशम अंग ग्रन्थ है।[12] इसकी विषयवस्तु का विभाजन दो द्वारों (आस्रव और संवर) में हुआ है। प्रत्येक द्वार में पाँच अध्ययन हैं। आस्रव से तात्पर्य है आत्मा रूप तालाव में जल रूप कर्मों का आगमन। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह आदि पाँच आस्रव के द्वार हैं। ये अधर्म-द्वार हैं। इसके विपरीत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह—पाँच धर्म-द्वार हैं। इनके द्वारा आत्मा रूप सरोवर में कर्मरूप जल के आगमन को रोका जाता है। यही संवर है।

आस्रव-द्वार के चतुर्थ अध्ययन में कृष्णचरित का वर्णन है। कृष्ण के महान् चारित्र का, उनके श्रेष्ठ अर्ध-चक्रवर्ती राजा के रूप का; उनकी रानियों, पुत्रों तथा अन्य परिजनों का वर्णन सूत्र ६ में उपलब्ध है। सूत्र ७ में कृष्ण को चाणूर-मल्ल, रिष्ट बैल तथा कालिय नामक महान् विषैले सर्प का हन्ता कहा गया है। यमलार्जुन को मारनेवाले, महाशकुनि एवं पूतना के रिपु, कंस का मर्दन करनेवाले तथा राजगृह के अधिपति, वीर राजा जरासन्ध को नष्ट करनेवाले के रूप में कृष्ण का उल्लेख है। इस सूत्र में उनके व्यक्तित्व के महान् गुणों का भी वर्णन है। सूत्र ८ में उनके शस्त्रास्त्र, उनके लक्षणों आदि का वर्णन है।

निरयावलिका[13]—इसमें पाँच वर्ग हैं। पाँच वर्गों में पाँच उपांग अन्तर्निहित हैं। निरयावलिका अन्तकृद्दशांग का, कल्पावतंसिका अनुत्तरोपपातिक का, पुष्पिता प्रश्न-व्याकरण का, पुष्पचूलिका विपाकसूत्र का, एवं वृष्णिदशा दृष्टि-वादांग का उपांग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचवाँ वर्ग वृष्णिदशा वर्ग है। इसमें बारह अध्ययन हैं। पहला अध्ययन निषधकुमार का है। निषधकुमार कृष्ण के बड़े भाई राजा बलदेव तथा रानी रेवती के पुत्र थे। उन्होंने भी अर्हंत् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली थी। निषधकुमार की कथा के वर्णनक्रम में द्वारिकानगरी का वर्णन तथा वहाँ के राजा कृष्ण वासुदेव के माहात्म्य का वर्णन हुआ है। अर्हंत् अरिष्टनेमि के द्वारावती आगमन पर कृष्ण वासुदेव का प्रसन्न होना, अपने कौटुम्बिक जनों को बुलाना तथा सजधज कर सबको साथ ले अरिष्टनेमि के पास जाने का वर्णन है।

उत्तराध्ययन[१४]—इसकी गणना मूल सूत्रों में होती है। इसमें कुल ३६ अध्ययन हैं। बाइसवें अध्ययन में नेमिनाथचरित का वर्णन है। इसकी गाथाएँ १,२,३, ६,८,१०,११, २५ और २७ में कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख उपलब्ध हैं। इसमें कृष्ण के माता-पिता जन्मस्थान, उनका वासुदेव राजा होना, नेमिकुमार के लिए राजीमती की याचना करना, नेमिकुमार के विवाह-महोत्सव में जाना तथा नेमिकुमार के प्रव्रजित होने पर उन्हें मनोरथ प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद देना तथा जितेन्द्रिय व महान् संयमी अरिष्टनेमि की वन्दना कर द्वारावती लौटने का उल्लेख है।

आगमेतर साहित्य में कृष्णचरित्र-वर्णन की प्रवृत्तियाँ

आगमेतर साहित्य में कृष्णचरित का वर्णन करनेवाली दो प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध हैं—प्रथम वे कृतियाँ हैं जो त्रेषठशलाका-पुरुषों का चरितवर्णन करने के उद्देश्य से लिखी गयी हैं। ये पुराण तथा चरित संज्ञक कृतियाँ हैं यथा गुणभद्राचार्य कृत महापुराण तथा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित आदि विशालकाय काव्य-कृतियाँ हैं। इन्हीं में हरिवंशपुराण संज्ञक कृतियों को भी सम्मिलित किया जा सकता है। हरिवंशपुराण शीर्षक कृतियों में हरिवंश में उत्पन्न शलाकापुरुषों तथा अन्य श्रेष्ठपुरुषों का चरित वर्णन है, इन्हीं में श्रीकृष्ण का चरित भी आया है। दूसरी वे कृतियाँ हैं जो तीर्थंकर अरिष्टनेमि, कृष्ण के भाई मुनि गजसुकुमाल, कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार आदि की परम्परागत जैन कथावस्तु को आधार बना कर लिखी गयी हैं। इन कृतियों में द्वारिका के महान् शक्तिशाली राजा के रूप में श्रीकृष्ण का वर्णन है। ये अपेक्षाकृत छोटी काव्य कृतियाँ हैं। महासेन कृत 'प्रद्युम्नचरित', ब्रह्म नेमिदत्त का 'नेमिजिनचरित' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

जैन साहित्य में कृष्णचरित का सम्पूर्ण वर्णन पौराणिक कृतियों में या समस्त शलाकापुरुषों का चरित वर्णन करनेवाली कृतियों में ही हुआ है। यह परम्परा प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि सभी भाषाओं के जैनसाहित्य में एक-सी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है। जो रचनाएँ नेमिनाथ, प्रद्युम्न, गजसुकुमाल आदि के चरित वर्णन को आधार बनाकर की गयी हैं उनमें आधिकारिक कथावस्तु से सम्बन्धित महापुरुष का चरित वर्णित है। पौराणिक कृतियों में, विशेषतः हरिवंश-पुराण संज्ञक कृतियों में, इन सभी का चरित-वर्णन मूल कृष्णकथा के अवान्तर प्रसंगों के रूप में हुआ है। हमने कृष्णकथा से सम्बन्धित अध्याय में अवान्तर प्रसंगों के रूप में इन महापुरुषों के जीवनचरित का उल्लेख किया है। स्वाभाविक ही इन महा-पुरुषों के जीवनचरित पर आधारित स्वतन्त्र रचनाओं में कृष्णचरित का प्रासंगिक वर्णन हुआ है। यह परम्परा समस्त जैन साहित्य में एक-सी बनी रही है। अतः हमने ऐसी कृतियों को भी कृष्णचरित का वर्णन करनेवाली कृतियों के रूप में इस अध्याय में सम्मिलित किया है। वस्तुतः जैन-परम्परा के कृष्णचरित साहित्य में या तो शलाकापुरुषों का वर्णन करनेवाली पौराणिक कृतियाँ हैं या फिर कृष्ण से सम्बन्धित उपर्युक्त महापुरुषों का चरित वर्णन करनेवाली कृतियाँ हैं।

पाण्डवों से सम्बन्धित रचनाएँ पाण्डवपुराण, पाण्डवचरित आदि संस्कृत तथा हिन्दी में उपलब्ध हैं। इस प्रकार की रचनाओं में महाभारत की कथा तथा जैन स्रोतों से उपलब्ध पाण्डवगण से सम्बन्धित प्रसंगों को मिला दिया गया है। इनके रचनाकारों ने महाभारत के पाण्डवचरित का जैन रूपान्तरण कर लिया तथा पाण्डवगण से सम्बन्धित जैन प्रसंगों को यथास्थान जोड़ लिया है। ऐसी रचनाओं में भी कृष्णचरित का प्रासंगिक वर्णन जैन परम्परानुसार द्वारिका के 'वासुदेव राजा' के रूप में हुआ है।

संक्षेप में जैन साहित्य में कृष्णचरित के वर्णन की यही मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

आगे हम प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश व हिन्दी भाषा में रचित कृष्णचरित सम्बन्धी उपलब्ध कृतियों का परिचय और उनमें कृष्णचरित वर्णन के स्वरूप का विवरण दे रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्णचरित सम्बन्धी आगमेतर कृतियाँ

(i) प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश कृतियाँ

क्रम संख्या	नाम कृति	कृतिकार	रचनाकाल	प्रकाशक
(१)	वसुदेव हिण्डी (प्रा०)	संघदास गणि, धर्मदास-गणि	५वीं शती ई.	आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर।
(२)	हरिवंश पुराण (सं०)	आचार्य जिनसेन	७८३ ई.	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
(३)	रिट्ठणेमि चरिउ (अप०)	स्वयंभू	८वीं शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर छोटे दीवानजी, जयपुर।
(४)	उत्तरपुराण (महापुराण) (सं०)	आचार्य गुणभद्र	८५३ ई.	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
(५)	तिसिट्ठ-महापुरिस-गुणालंकारु (अप०)	पुष्पदन्त	९५९-९६५ ई.	माणिक चन्द्र जैन ग्रन्थमाला, बम्बई।
(६)	प्रद्युम्नचरित (सं०)	महासेनाचार्य	१०वीं शती ई.	ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।
(७)	प्रद्युम्नचरित (सं०)	आचार्य सोमकीर्ति	१०वीं शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।
(८)	त्रिषष्ठि-शलाकापुरुष-चरित (सं०)	हेमचन्द्राचार्य	११वीं शती ई.	आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९)	हरिवंशपुराण (अप०)	धवल	११वीं शती ई.	अप्रकाशित, ई० १५२२ की प्रतिलिपि उपलब्ध। दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरापन्थियों का जयपुर।
(१०)	णेमिणाह-चरिउ (अप०)	दामोदर	१२३० ई०	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(११)	कण्हचरिय (प्रा०)	देवेन्द्र सूरि	१३वीं शती ई.	ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर जैन संस्था, रतलाम।
(१२)	हरिवंशपुराण (अप०)	यशः कीर्ति	१४४० ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(१३)	पाण्डव पुराण (अप०)	यशः कीर्ति	१४४३ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन बड़ा मन्दिर तेरापन्थियों का, जयपुर।
(१४)	णेमिणाह चरिउ (अप०)	लखमदेव	१४५३ ई. (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दि० जैन मन्दिर पाटोदी, जयपुर।
(१५)	हरिवंश पुराण (अप०)	श्रुतकीर्ति	१४९५ ई. (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जययुर।
(१६)	पज्जुण्ण चरिउ (अप०)	कवि सिंह	१४९६ ई. (प्रतिलिपि)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(१७)	णेमिणाह चरिउ (अप०)	रइधू	१६वीं शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, जैन सिद्धान्त-भवन, आरा।
(१८)	पाण्डव पुराण (सं०)	शुभचन्द्र	१५५१ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१९)	हरिवंश पुराण (सं०)	ब्रह्म जिनदास	१६०४ ई. (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध : आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(२०)	हरिवंश पुराण (सं०)	ब्रह्म नेमिदत्त	१६१७ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र-भण्डार, जयपुर।
(२१)	प्रद्युम्न चरित (सं०)	रत्नचन्द्रगणि	१८७७ ई. (लिपिकाल)	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२२)	पाण्डव पुराण (सं०)	देवप्रभ सूरि	१९वीं शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर।

(ii) हिन्दी-कृतियाँ

(१)	नेमिनाथ रास	सुमति गणि	१२३८ ई.	हस्तलिखित प्रति उपलब्ध : जैसलमेर दुर्ग स्थित शास्त्र-भण्डार।
(२)	गयसुकुमाल रास	कवि देल्हण (देवेन्द्रसूरि)	१३वीं शती ई.	आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ (सम्पादक—डा० गणपति चन्द्र गुप्त) पृ० ५७-६०।
(३)	प्रद्युम्न चरित	कवि सधारू	१३५४ ई.	प्रकाशित, महावीर जी अतिशय क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी समिति, जयपुर, सम्पादक—पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ एवं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल।
(४)	रंगसागर नेमि फागु	सोमसुन्दर सूरि	१४२६ ई.	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३६-१४८।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)	सुरंगाभिध नेमि फागु	धनदेव गणि	१४४५ ई.	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन रचनाएँ, मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० ११६-१२६ पर प्रकाशित।
(६)	हरिवंश पुराण	ब्रह्म जिनदास	१५६३ ई.	हस्तलिखित प्रति उपलब्ध, खण्डेलवाल दि० जैन मन्दिर, उदयपुर।
(७)	नेमिनाथ फागु	जयशेखर सूरि	१५वीं शती ई.	हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ, पृ० ११०-११७ पर प्रकाशित।
(८)	बलिभद्र चौपाई	कवि यशोधर	१५२८ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(९)	नेमिनाथ रास	मुनि पुण्यरतन	१५२९ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(१०)	प्रद्युम्न रासो	ब्रह्म रायमल्ल	१५७१ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(११)	नेमीश्वर रास	ब्रह्म रायमल्ल	१५५८ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(१२)	नेमीश्वर की वेलि	कवि ठाकुरसी	१६वीं शती ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर वधीचन्द जी, जयपुर।
(१३)	बलभद्र वेलि	कवि सालिग	ई. सन् १६२१ कीप्रतिलिपि	अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।
(१४)	हरिवंश पुराण	शालिवाहन	१६३८ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन पल्लीवाल मन्दिर, धूलियागंज आगरा एवं आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(१५)	नेमिश्वर चन्द्रायण	नरेन्द्रकीर्ति	१६३३ ई. (प्रतिलिपि)	अप्रकाशित, प्रतिलिपि उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६)	नेमिनाथ रास	कनककीर्ति	१६३५ ई.	अप्रकाशित, प्रतिलिपि उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार, जयपुर।
(१७)	नेमिनाथ रास	मुनि केसरसागर	१६३५ ई. प्रतिलिपि	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध : विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(१८)	प्रद्युम्न प्रबन्ध	देवेन्द्रकीर्ति	१६६५ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर संभवनाथ जी, उदयपुर।
(१९)	पाण्डव पुराण	बुलाकीदास	१६६९ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, शास्त्र भण्डार श्री महावीर जी क्षेत्र, जयपुर।
(२०)	नेमीश्वर रास	नेमिचन्द्र	१७१२ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(२१)	नेमिनाथ चरित्र	अजयराज पाटनी	१७३६ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२२)	हरिवंश पुराण	खुशालचन्द काला	१७२३ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।
(२३)	उत्तर पुराण	खुशालचन्द काला	१७३२ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर लूणकरण जी पांड्या, जयपुर।
(२४)	नेमनाथ चरित्र	जयमल	१७५७ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(२५)	नेमनाथ रास	रतनमुनि	१७६७ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६)	नेमनाथ रास	विजयदेव सूरि	१७६६ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(२७)	नेमिचन्द्रिका	मनरंगलाल पल्लीवाल	१८२३ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरापन्थियान, जयपुर।
(२८)	कृष्ण की ऋद्धि	बुधमल	१८४६ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञानभण्डार, जयपुर।
(२६)	प्रद्युम्नचरित	मन्नालाल	१८४४ ई.	अप्रकाशित, प्रति उपलब्ध दि० जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।
(३०)	भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम कृष्ण	मुनि चौथमल जी	१६४१ ई.	प्रकाशन—सिरेमलजी नन्दलालजी पीतलिया, सीहोर कैण्ट।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृति परिचय

वसुदेव-हिण्डी

आगमेतर प्राकृत कथा-साहित्य में उपलब्ध यह एक अत्यन्त प्राचीन कृति है। इस कृति का मुख्य वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी के भ्रमण (हिण्डी) का वृतान्त है। यह कृति दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड के रचयिता संघदास गणि तथा दूसरे के धर्मसेन गणि हैं। प्रथम खण्ड में २९ लंभक, ११,००० श्लोकप्रमाण तथा दूसरे खण्ड में ६९ लंभक १६,००० श्लोकप्रमाण हैं। संघदास गणि का समय ई० सन् की लगभग पाँचवीं शताब्दी माना जाता है।[१५]

प्रस्तुत कृति में कथा का विभाजन छह अधिकारों में किया गया है। ये अधिकार हैं—कहुप्पत्ति (कथा की उत्पत्ति), पीठिया (पीठिका), मुह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसंहार (उपसंहार)।

वसुदेव जी के चरित का वर्णन दूसरे खण्ड में है। इसके अनुसार, वसुदेवजी सौ वर्ष तक परिभ्रमण करते रहे और उन्होंने सौ कन्याओं से विवाह किया। वसुदेवजी के भ्रमण की मुख्य कथा के साथ-साथ इसमें अनेक अन्तःकथाएँ हैं जिनमें तीर्थंकरों तथा अन्य शलाकापुरुषों के चरित वर्णित हैं।

पीठिका में कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और शंबकुमार की कथा का वर्णन है। बलराम तथा कृष्ण की अग्रमहिषियों का परिचय, प्रद्युम्नकुमार का जन्म, अपहरण, प्रद्युम्न का अपने माता-पिता से मिलना तथा पाणिग्रहण आदि का वर्णन है। 'मुख' अधिकार में कृष्ण के पुत्र शंब और भानुकुमार की क्रीड़ाओं का वर्णन है। इनके अतिरिक्त इस कृति में हरिवंश कुल की उत्पत्ति, कंस के पूर्वभव आदि का भी वर्णन हुआ है।

जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण

जैन साहित्य में कृष्णचरित वर्णन की दृष्टि से इस पौराणिक कृति का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यह ६६ सर्गों में पूर्ण एक विशालकाय पौराणिक काव्यकृति है। उपलब्ध जैन साहित्य में यह ऐसी प्रथम कृति है जिसमें कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन-चरित व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप में वर्णित है। कृष्णकथा के अवान्तर प्रसंगों का भी इसमें विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। कृष्णचरित-वर्णन की दृष्टि से बाद के जैन साहित्यकारों के लिए यह उपजीव्य कृति रही है।

इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य जिनसेन थे। ये पुन्नाट प्रदेश (कर्नाटक का पुराना नाम) के मुनि संघ की आचार्य परम्परा में हुए थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण था। जिनसेन के माता-पिता, जन्म-स्थान तथा प्रारम्भिक जीवन का कुछ भी उल्लेख उपलब्ध नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस का रचनाकाल विक्रम की नवमी शताब्दी का मध्यकाल है। यह ग्रन्थ शक संवत् ७०५ (ई० सन् ७८३) में पूर्ण हुआ।[१६] ग्रन्थकार के उल्लेखानुसार वर्धमानपुर में नन्नराज द्वारा निर्माण कराये गये श्री पार्श्वनाथ मन्दिर में इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ की गयी थी। परन्तु वहाँ इसकी रचना पूर्ण नहीं हो सकी। पर्याप्त भाग शेष बच रहा, बाद में 'दोस्तटिका' नगरी की प्रजा के द्वारा निर्मित, उत्कृष्ट अर्चना और पूजा-स्तुति से युक्त वहाँ के शान्तिनाथ मन्दिर में इसकी रचना पूर्ण हुई।[१७]

वर्धमानपुर की स्थिति के बारे में मतभेद हैं। डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के मत से यह काठियावाड़ का वर्तमान बढ़वान है। डॉ० हीरालाल के मतानुसार, यह मध्यभारत के चार जिलों का बदनावर होना चाहिए।[१८]

ग्रन्थ की विषयवस्तु ६६ सर्गों (आठ अधिकारों) में विभक्त है। पुराण में सर्वप्रथम लोक के आकार का वर्णन, फिर राजवंशों की उत्पत्ति, तदनन्तर हरिवंश का अवतार, फिर वसुदेव की चेष्टाओं का कथन, तदनन्तर नेमिनाथ का चरित, द्वारिका का निर्माण, युद्ध का वर्णन और निर्वाण—ये आठ शुभ अधिकार कहे गये हैं।[१९]

कृष्णचरित का वर्णन ग्रन्थ के निम्न सर्गों में इस प्रकार हुआ है—कृष्ण-जन्म, बालक्रीड़ा, कृष्ण के लोकोत्तर पराक्रम का वर्णन (सर्ग ३५)। कंस द्वारा कृष्ण को मारने के प्रयत्न, मथुरा में मल्लयुद्ध, कृष्ण द्वारा कंस वध, सत्यभामा से विवाह, जरासन्ध के भाई अपराजित का वध (३६)। जरासन्ध के आक्रमण के कारण यादवों का मथुरा से प्रस्थान। द्वारिका का निर्माण तथा द्वारिका-प्रवेश (४१)। कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण व विवाह, शिशुपाल-वध (४२)। प्रद्युम्न का जन्म तथा हरण (४३)। कृष्ण का जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी पद्मावती और गान्धारी के साथ विवाह (४४)। प्रद्युम्न का द्वारिका लौटना (४७)। कृष्ण के पुत्रों का वर्णन (४८)। कृष्ण-जरासन्ध युद्ध तथा कृष्ण द्वारा जरासन्ध का वध (५०)। जरासन्ध-वध के फलस्वरूप नारायण (वासुदेव) रूप में कृष्ण की प्रसिद्धि तथा अनेक राजाओं, विद्याधरों द्वारा कृष्ण का अभिनन्दन (५३)। द्रौपदीहरण, कृष्ण द्वारा राजा पद्मनाभ को दण्डित कर द्रौपदी को वापिस लाना। कृष्ण का पाण्डवों पर कुपित होना तथा उन्हें हस्तिनापुर से निर्वासित करना। पाण्डवों का दक्षिण समुद्र-तट पर जाकर मधुरा नगरी बसाकर रहना (५४) नेमिनाथ चरित वर्णन (५५)। गजसुकुमाल चरित वर्णन (६०)। द्वारिका-दहन (६१)। कृष्ण का परमधाम-गमन (६२)।

यह पुराण-ग्रन्थ महाकाव्य के गुणों से गुथा हुआ एक उच्चकोटि का काव्य है। इसमें सभी रसों का अच्छा परिपाक हुआ है। जरासन्ध और कृष्ण के बीच रोमांचकारी युद्ध-वर्णन में वीररस की अभिव्यक्ति है। द्वारिका-निर्माण और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदुवंशियों के प्रभाव-वर्णन में अद्‌भुत रस का प्रकर्ष है। नेमिनाथ का वैराग्य और वलराम का विलाप करुण रस से भरा हुआ है। काव्य का अन्त शान्त रस में होता है। प्रकृतिचित्रण के भी अनेक सुन्दर स्थल हैं; यथा ऋतु-वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन आदि। ग्रन्थ की भाषा उदात्त तथा प्रौढ़ है एवं अलंकार व विविध छन्दों से अलंकृत है।

हिन्दी में हरिवंशपुराण शीर्षक कृतियाँ इससे प्रभावित रचनाएँ हैं। जैसे शालिवाहन कृत हरिवंशपुराण, खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण आदि।

महापुराण (उत्तर-पुराण)

संस्कृत जैन साहित्य का यह अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके दो भाग हैं: आदिपुराण और उत्तरपुराण। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ छिहत्तर पर्वों (सर्गों) में पूरा हुआ है। इसके प्रथम ४२ पर्व और ४३ पर्व के ३ पद्य आचार्य जिनसेन रचित हैं शेषभाग को इनके शिष्य गुणभद्राचार्य ने पूरा किया था। इस शेष भाग में उत्तर पुराण है जिसमें कि कृष्णचरित का वर्णन हैं। उत्तरपुराण प्रकाशित रचना है।[२०]

आदिपुराण के रचयिता आचार्य जिनसेन हरिवंशपुराण के रचयिता जिनसेनाचार्य से भिन्न व्यक्ति थे। ये पंचस्तूपान्वय (अन्यनाम से नान्वय) सम्प्रदाय के आचार्य थे।[२१] इन्होंने अपना ग्रन्थ त्रेसठ शलाकापुरुषों का चरित्र वर्णन करने की दृष्टि से लिखना प्रारम्भ किया था, परन्तु बीच में ही उनका देहावसान हो गया था। अतः आदिपुराण के शेप पाँच पर्व तथा उत्तरपुराण (२१ पर्व) गुणभद्राचार्य रचित हैं।

पं० नाथूराम प्रेमी ने आदिपुराण का प्रारम्भ वि० संवत् ८९५ (ई० सन् ८३८) में अनुमानित किया है तथा उत्तरपुराण की समाप्ति वि०सं ९१० (ई० सन् ८५३) मानी है।[२२] उत्तरपुराण के रचयिता गुणभद्र महान् विद्वान्, काव्यप्रतिभा के धनी तथा बड़े ही गुरुभक्त व्यक्ति थे। उनके जन्म तथा मृत्यु की तिथियाँ, जन्म-स्थान, माता-पिता आदि के बारे में ग्रन्थ में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। उत्तरपुराण को उन्होंने बंकापुर नामक स्थान पर पूरा किया था। यह स्थान पूना वेंगलोर रेलवे लाइन के हरिहर स्टेशन से २३ कि.मी. दूर धारवाड़ जिले में वताया गया है।[२३]

आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के चरित का वर्णन है। शेप २३ तीर्थंकरों तथा अन्य शलाकापुरुषों का चरित वर्णन उत्तरापुराण में हुआ है। स्वाभाविक ही ये वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त हैं। उत्तरपुराण के पर्व ७१-७३ में कृष्णचरित का वर्णन है। हरिवंशपुराण की अपेक्षा यह चरितवर्णन अत्यधिक संक्षिप्त है। इसमें परम्परागत कृष्णचरित के प्रमुख प्रसंगों का ही प्रतिपादन हो सका है अन्यथा अधिकांश उल्लेख मात्र हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी में खुशालचन्द काला कृत उत्तरपुराण इस ग्रन्थ से प्रभावित रचना है।

महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्नचरित

श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जीवनचरित पर आधारित यह संस्कृत खण्ड-काव्य है। इसके रचयिता लाट-वर्गट मुनि संघ अर्थात् गुजरात (लाट) तथा डूंगरपुर-बाँसवाड़ा (राजस्थान के दो भूतपूर्व राज्य जो बागड़ प्रदेश के नाम से जाने जाते रहे हैं) के मुनिसंघ के आचार्य महासेन हैं। इनकी यही एक मात्र कृति मिलती है। श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार इसकी रचना वि० संवत् १०३१ और १०६६ के मध्य हुई है।[२४]

प्रद्युम्न का जैन चरित-नायकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे कामदेव (अतिशय सुन्दर पुरुष) कहे गये हैं। उनका जन्म द्वारिका के राजा कृष्ण की रानी रुक्मिणी से हुआ था। जन्म की छठी रात्रि को ही धूम्रकेतु ने बालक प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया। बाद में कालसंवर नामक विद्याधर राजा के यहाँ उनका लालन-पालन हुआ। युवा होकर तथा अनेक विद्याओं में पारंगत होने के बाद नारद द्वारा वास्तविक स्थिति जानकर प्रद्युम्न अपने माता-पिता के पास लौटे। सभी बड़े प्रसन्न हुए। द्वारिका में उत्सव मनाया गया। प्रद्युन ने लम्बी अवधि राजसुख भोगकर वैराग्य की दीक्षा ली तथा निर्वाण प्राप्त किया। कृति में प्रद्युम्न की यह परम्परागत कथा वर्णित है। प्रद्युम्नचरित के अनुकरण पर कालान्तर में हिन्दी में भी खण्डकाव्य प्रस्तुत किये गये। यथा सधारु का प्रद्युम्नचरित, देवेन्द्रकीर्ति का प्रद्युम्न प्रबन्ध आदि।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित

त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित संस्कृत-प्राकृत के प्रसिद्ध व्याकरण 'सिद्ध हेम-शब्दानुशासन' के कर्ता श्वेताम्बर जैनाचार्य हेमचन्द्र का संस्कृत भाषा में निबद्ध त्रेषठशलाका-पुरुषों का चरित वर्णन करने वाला काव्य-ग्रन्थ है। हेमचन्द्र गुजरात के बड़े प्रभावशाली जैनाचार्य थे जिनका सम्बन्ध सिद्धराज जयसिंह तथा कुमार पाल जैसे गुजरात के प्रसिद्ध राजाओं से था। इनका व्याकरण ग्रन्थ 'सिद्ध हेमशब्दानुशासन' जयसिंह सिद्धराज को समर्पित किया गया था। कहते हैं इस व्याकरण ग्रन्थ की हाथी पर सवारी निकाली गयी थी। स्वयं हेमचन्द्राचार्य भी उसी हाथी पर विराजमान थे। इनका जन्म गुजरात के एक जैन परिवार में वि० सं० ११४५ में हुआ था तथा मृत्यु वि०सं० १२२९ में हुई।[२५] चौलुक्य-राज कुमारपाल के ये गुरु थे। ये महान् विद्वान् तथा संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश आदि भाषाओं के ज्ञाता थे।

'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित' आचार्य की बाद की रचना है। डॉ० बूल्हर ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका रचनाकाल संवत् १२१६-२८ माना है।[२६] हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना राजा कुमारपाल के अनुरोध पर की थी। इस चरित-ग्रन्थ में परम्परागत ६३ शलाकापुरुषों का चरित वर्णन है। इस दृष्टि से यह महापुराण की परम्परा की रचना है। इसमें जैनों की अनेक कथाएँ, इतिहास, पौराणिक मान्यताएँ, सिद्धान्त एवं तत्त्वज्ञान का निरूपण है। ग्रन्थ में १० पर्व हैं। प्रत्येक पर्व में अनेक सर्ग हैं। कृष्णचरित का वर्णन आठवें पर्व में हुआ है। इसी पर्व में नेमिनाथ, वलराम, जरासन्ध आदि के चरित वर्णित हैं। इसकी भाषा सरल व प्रसाद गुण सम्पन्न है। गुजरात का तत्कालीन समाज कृति में अच्छी तरह प्रतिविम्बित हुआ है।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यह ग्रन्थ अधिक प्रचलित रहा है। इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों ने अपनी हिन्दी कृतियों के कथानकों के लिए आगमिक कृतियों के साथ ही इस ग्रन्थ का भी प्रमुख स्रोत-ग्रन्थ के रूप में उपयोग किया है।

रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमि-चरित)

यह अपभ्रंश भाषा की महत्त्वपूर्ण काव्य-कृति है। इसके रचयिता महाकवि स्वयंभू थे।

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से स्वयंभू अपभ्रंश साहित्य के प्रथम कवि हैं। श्री नाथूराम प्रेमी ने उनका समय वि० सं० ७३४ से ८४० के मध्य अनुमानित किया है।[२७] इनकी एक अन्य कृति 'पउम चरिउ' में उपलब्ध उल्लेखानुसार इनके पिता का नाम मारुत तथा माता का पद्मिनी था। इनकी दो पत्नियाँ थीं—अमृताम्बा तथा आदित्याम्बा। इनके अनेक पुत्रों में त्रिभुवन का नाम प्रमुख है। ये दक्षिणात्य थे और संभवतः कर्नाटक प्रदेश के निवासी थे। इन्होंने अपने वंश-गोत्र आदि का कोई उल्लेख अपनी रचनाओं में नहीं किया।[२८]

महाकवि स्वयंभू के साहित्य की जो जानकारी अभी तक मिल पाई है वह इस प्रकार है—(१) पउमचरिउ (पद्मचरित), (२) रिट्ठणेमिचरिउ (अरिष्टनेमिचरित), (३) पंचमिचरिउ (नागकुमारचरित), तथा (४) स्वयंभू के छन्द। इनमें 'रिट्ठणेमिचरिउ' में कृष्ण-कथा का वर्णन है। यह ११२ सन्धियों (सर्गों) में निबद्ध बृहत्काय महाकाव्य है। इनमें प्रथम ९२ सन्धियाँ (यादव काण्ड १३ सन्धियाँ, कुरुकाण्ड १९ तथा युद्धकाण्ड की ६० सन्धियाँ) महाकवि स्वयंभू ने छह वर्ष, तीन मास तथा ग्यारह दिनों में पूर्ण की थीं ऐसा उल्लेख ग्रन्थ की ९२ वीं सन्धि की समाप्ति पर हुआ है।[२९] शेष २० संधि में से प्रथम सात संभवतः स्वयं स्वयंभू ने तथा अवशिष्ट उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने पूर्ण की थीं। इनमें से कतिपय सन्धियों (१०६, १०८, ११० व १११) में मुनि जसकीर्ति (यशःकीर्ति) का भी नामोल्लेख है, अतः अनुमान किया जा सकता है कि इनकी रचना में उनका भी हाथ है। श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार, मुनि यशःकीर्ति ग्रन्थकर्ता से लगभग ६-७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौ वर्ष बाद के लेखक हैं तथा उनका स्वयं रचित हरिवंशपुराण भी उपलब्ध है। लगता है उन्होंने स्वयंभू, त्रिभुवन स्वयंभू के मूल ग्रन्थ से नष्ट हो गये अंशों के स्थान पर अपनी रचना के अंश काट-छाँट कर जड़ दिये हों।[30]

रिट्ठणेमिचरिउ के यादवकाण्ड में कृष्णचरित का वर्णन है। कृष्ण के साथ ही प्रद्युम्न तथा अरिष्टनेमि का चरितवर्णन भी इसी काण्ड में हुआ है। कुरुकाण्ड में कौरव-पाण्डवों का वर्णन तथा युद्धकाण्ड में उनके युद्ध का वर्णन है।

स्वयंभू अपभ्रंश भाषा के महान् कवि तथा आचार्य थे। अपभ्रंश के अन्य कवियों ने अत्यन्त आदर के साथ उनका नाम-स्मरण किया है। वे छन्द तथा व्याकरण शास्त्र के भी महान् विद्वान थे। छन्दचूडामणि तथा कविराज धवल उनके विरुद थे। उनके पुत्र त्रिभुवन भी अपने पिता के समान ही समर्थ कवि थे। कविराज चक्रवर्ती उनका विरुद था।

रिट्ठणेमिचरिउ अप्रकाशित रचना है। इसकी एक प्रति शास्त्र-भण्डार श्री दि० जैन मन्दिर, छोटा दीवानजी जयपुर में उपलब्ध है।

तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालंकार (त्रिषष्टि-महापुरुष-गुणालंकार)

'तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालंकार' महाकवि पुष्पदन्त रचित एक विशालकाय अपभ्रंश काव्यकृति है जिसमें कवि ने जैन परम्परागत ६३ शलाकापुरुषों के चरितों का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। जैन पुस्तक भण्डारों में इसकी अनेकानेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं और इस पर टिप्पण ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जिनमें कतिपय उपलब्ध भी हैं।[31] यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।[32]

संपूर्ण ग्रन्थ १२२ सन्धियों (सर्गों) तथा २० हज़ार श्लोकों में निबद्ध है। इसकी रचना में कवि को छह वर्ष लगे। इसका रचनाकाल पं० नाथूरामजी प्रेमी के अनुसार शक सं० ८८१-८८७ (ई० सन् ९५९-९६५) है।[33]

महाकवि पुष्पदन्त महान् और समर्थ कवि थे। वे काश्यप गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम केशवभट्ट तथा माता का नाम मुग्धादेवी था। उनके माता-पिता पहले शैव थे। कालान्तर में किसी दि० जैन गुरु के उपदेशामृत से जैन हो गये थे।[34]

कवि पुष्पदन्त मान्यखेट के राजा कृष्णराय तृतीय के मन्त्री भरत तथा उनके पुत्र नन्न के आश्रय में रहे। मान्यखेट का आधुनिक नाम मलखेड है जो जिला हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) में है।[35] पुष्पदन्त बड़े ही स्वाभिमानी, परन्तु निर्लिप्त प्रकृति के स्पष्टवादी एवं विनयशील पुरुष थे। महामात्य भरत को सम्बोधित करते हुए उन्होंने लिखा है—"मैं धन को तिनके के समान गिनता हूँ। उसे मैं नहीं लेता। मैं तो केवल अकारण प्रेम का भूखा हूँ और इसी से तुम्हारे निलय में हूँ।...मेरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविता जिनेन्द्र-चरणों की भक्ति से ही स्फुरायमान होती है, जीविका निर्वाह के कारण से नहीं"।[36] यह कृति आदिपुराण और उत्तरपुराण इन दो खण्डों में विभाजित है। आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का तथा उत्तरपुराण में अन्य तेईस तीर्थंकरों व अन्य शलाकापुरुषों का चरित-वर्णन है। उत्तरपुराण में पद्मपुराण (रामचरित) तथा हरिवंशपुराण (कृष्णचरित) भी सम्मिलित हैं। हरिवंशपुराण उत्तरपुराण की ८१ से ९२ तक की सन्धियों में वर्णित है। इसमें परम्परागत कृष्णचरित का संक्षेप में वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना शैली का आधार जिनसेन गुणभद्र कृत संस्कृत महापुराण है।

णेमिणाह-चरिउ (रिट्ठणेमि चरिउ अथवा हरिवंशपुराण)[37]

यह महाकवि रइधू की अपभ्रंश भाषा की रचना है। रइधू अपने समय के बड़े प्रभावशाली कवि एवं विद्वान् पण्डित थे। डॉ० राजाराम जैन ने अपने शोध प्रबन्ध 'रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन' में रइधू लिखित अनेक पुस्तकों का नामोल्लेख किया है। कवि रइधू का अपरनाम सिंहसेन भी था। इनके पिता का नाम साहू हरिसिंह तथा माता का नाम विजयश्री था। ये अपने माता-पिता के तीसरे पुत्र थे। इनकी जाति पद्मावती पुरवाल थी। ये गृहस्थ थे। इनकी पत्नी का नाम सावित्री तथा पुत्र का नाम उदयराज था। इनका समय १५-१६वीं शताब्दी वि० का है। इनके निवासस्थान के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इनका अधिकतर जीवन ग्वालियर तथा इसके आस-पास के क्षेत्र में रहते हुए व्यतीत हुआ। इनका सम्बन्ध काष्ठा संघ माथुर गच्छ की पुष्करणीय शाखा (दि० जैन आचार्यों का एक संघ) से था। ये प्रतिष्ठाचार्य भी थे। इनके द्वारा अनेक जिन-मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गयी थी।

रइधू लिखित 'णेमिणाहचरिउ' की एक हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धान्त भवन आरा में उपलब्ध है। यह प्रतिलिपि वि० सं० १९८७ की है। यह परम्परागत पौराणिक शैली का जैन काव्य है। इसका आधार मुख्यतः जिनसेन कृत हरिवंश-पुराण (संस्कृत) है। इसमें हरिवंशपुराण की परम्परागत कथावस्तु को कवि ने मात्र १४ सन्धियों एवं ३०२ कडवकों में वर्णित कर दिया है। हरिवंश का प्रारम्भ, यादवों की उत्पत्ति, वसुदेवचरित, कृष्णचरित, नेमिनाथचरित, प्रद्युम्नचरित, पाण्डवचरित आदि का कृति में वर्णन हुआ है।

काव्यत्व की दृष्टि से यह सुन्दर तथा सरस कृति है। इसमें शृंगार, वीर, रौद्र, शान्त आदि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा, भ्रान्तिमान, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, व्यतिरेक, सन्देह आदि शब्दालंकारों के अनेक उदाहरण कृति में उपलब्ध हैं। कवि की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रंश है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गयसुकुमाल रास

गयसुकुमाल रास आदिकालिक हिन्दी की रचना है। इसका रचनाकाल ई० सन् १२५८-६८ (वि० सं० १३१५-२५) के बीच अनुमानित किया गया है। इसके रचयिता कवि देवेन्द्र सूरि थे। उनके गुरु का नाम मुनि जगचन्द्र सूरि था।[१८]

इस रास-काव्य में कृष्ण के सहोदर अनुज मुनि गजसुकुमाल का चरित-वर्णन है। मुनि गजसुकुमाल का आख्यान जैन परम्परा में प्रसिद्ध है। आख्यान के अनुसार, एक समय अर्हत् अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन हुआ। उनके साथ जो उनके शिष्य मुनिगण थे उनमें समान रूप व आकृतिवाले छह सहोदर भी थे। वे दो-दो के दल में भिक्षार्थ देवकी के महलों में पहुँचे। देवकी को पहले तो यह भ्रम रहा कि वही मुनि बार-बार भिक्षा के लिए उसके महलों में आये हैं। परन्तु जब उसे वास्तविक स्थिति ज्ञात हुई तो उसे कृष्ण से पूर्व उत्पन्न अपने छह पुत्रों की स्मृति हो आयी। अगर वे जीवित होते तो आज ऐसे ही होते—इस विचार ने उसे विकल कर दिया। वह अत्यन्त उदास हो गयी। विशेषकर इसलिए और भी कि सात पुत्रों को जन्म देकर भी वह किसी का बाल्यसुख तक अनुभव न कर सकी। ऐसे ही समय कृष्ण माता के चरण-वन्दन को आये। माता को दुखी व उदास देख तथा उसका कारण जान उन्होंने माता की मनोरथ पूर्ति के लिए तप किया। प्रभाव स्वरूप काल पा कर देवकी को पुत्रोत्पन्न हुआ। गज शावक की भाँति सुकुमार होने के कारण पुत्र का नाम गजसुकुमार (गजसुकुमाल) रखा गया। गजसुकुमाल के युवा होने पर कृष्ण ने उसका विवाह-सम्बन्ध द्वारिका के ही सोमिल नामक ब्राह्मण की रूपवती कन्या सोमा से निश्चित किया। उन दिनों अर्हत् अरिष्टनेमि द्वारिका आये हुए थे। गजसुकुमाल उनका उपदेश श्रवण कर वैराग्य की दीक्षा लेने का निश्चय प्रकट करते हैं। माता देवकी, भाई कृष्ण तथा अन्य परिवार-जन के समझाने-बुझाने के बाद भी उनका वैराग्य ग्रहण करने का दृढ़ निश्चय अपरिवर्तित रहता है। अन्ततः उन्हें आज्ञा देनी पड़ती है। गजसुकुमाल अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण करते हैं तथा उनकी आज्ञा से श्मसान भूमि में जाकर ध्यानावस्थित हो जाते हैं। सन्ध्यावेला में यज्ञ के लिए समिधा लेकर लौटते हुए सोमिल ब्राह्मण उस श्मशानभूमि के पास से निकलते हैं तथा गजसुकुमाल को मुण्डित सिर व ध्यानावस्थित देखकर उनका मन क्रोध व क्षोभ से भर जाता है। यह सोचकर कि 'इसने मेरी निर्दोष पुत्री के जीवन से खिलवाड़ करने का निश्चय किया है, मैं भी इससे बदला लूंगा', वे पास ही जलती हुई चिता में से अंगारे एकत्रित कर लाते हैं तथा गजसुकुमाल के मुण्डित सिर पर गीली मिट्टी का अवरोध बनाकर अंगारे भर देते हैं। मुनि निर्विकार भाव से भयंकर वेदना को सहन करते हुए जीवन मुक्त होते हैं।

गजसुकुमाल का यह परम्परागत आख्यान कृति में ३४ छन्दों में वर्णित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कृति में कृष्ण के वीर व पराक्रम सम्पन्न राजपुरुष के स्वरूप का वर्णन है। उसकी तुलना इन्द्र से करते हुए कवि लिखता है—

नयरिहिं रज्जु करेई, तहि कहु नरिंदू ।
नरवइ मति सणहो जिव सुरगण इंदू ।।

कृष्ण के द्वारा चाणूर मल्ल, कंस तथा-जरासन्ध हनन का कवि ने उल्लेख किया है। वे वासुदेव राजा हैं। शंख, चक्र तथा गदा आदि का धारण करना जैन परम्परानुसार वासुदेव का लक्षण है। इसका भी कवि ने उल्लेख किया है। यथा—

संख चक्क गय पहरण धारा ।
कंस नराहिव कय संहारा ।।
जिण चाणउरि मल्लु वियरिउ ।
जरासिंधु बलवंतऊ घाडिउ ।।

कृति की भाषा से १३ वीं शताब्दी ई० के भाषारूप की जानकारी मिलती है। इसकी भाषा को परवर्ती अपभ्रंश अथवा प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है, जो कि हिन्दी भाषा का आदिकालिक रूप है।

प्रद्युम्नचरित

प्रद्युम्नचरित कवि सधारू की रचना है। यह कृति सम्पादित होकर प्रकाशित हो गयी है। इसका रचनाकाल सन् १३५४ (संवत् १४११) माना गया है।[३९]

कृति में श्री कृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित वर्णित है। कृति का प्रारम्भ द्वारिका के वैभव तथा द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण की शक्ति-सम्पन्नता के वर्णन से हुआ है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

यादव-कुल शिरोमणि श्रीकृष्ण द्वारिका में राज्य करते थे। सत्यभामा उनकी पटरानी थी। एक दिन नारद का द्वारिका आगमन हुआ। सत्यभामा के महल में उनका सम्मान न होने के कारण वे कुपित हो गये। उन्होंने बदला लेने की भावना से किसी अधिक सुन्दरी राज-कन्या से कृष्ण का पाणिग्रहण कराने का निश्चय किया। इसके लिए कुण्डलपुर के राजा भीष्म की कन्या रुक्मिणी का उन्होंने चुनाव किया तथा कृष्ण व रुक्मिणी में प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया। नारद की सूचनानुसार श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया व उसके लिए निश्चित वर शिशुपाल का युद्ध में वध किया। काल पाकर रुक्मिणी ने एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। जन्म की छठी रात्रि को प्रद्युम्न का धूमकेतु असुर द्वारा अपहरण कर लिया गया। बाद में वह विद्याधर राजा काल-संवर व उसकी पत्नी कंचनमाला को मिला जिन्होंने उसका लालन-पालन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। कालसंवर के यहाँ १२ वर्ष तक रहकर उसने बहुत-सी विद्याएँ सीखीं व अस्त्र-शस्त्र संचालन में पारंगत हुआ। १२ वर्ष बाद वह पुनः अपने माता-पिता से आकर मिला। श्रीकृष्ण ने उसका राज्याभिषेक किया तथा विवाह सम्पन्न कराया। बहुत दिनों तक सुखपूर्वक रहने के बाद नेमिनाथ की वाणी से प्रभावित हो एक दिन प्रद्युम्न ने विरक्त होकर दीक्षा ले ली तथा महान् तप करके सिद्धत्व प्राप्त किया।

कवि ने ७०१ पद्यों में प्रद्युम्न की उक्त कथा कही है। यह काव्य ६ सर्गों में विभाजित है। घटनाओं का क्रम श्रृंखलाबद्ध है। कृति में विरह, मिलन, युद्धों व नगरों के सरस वर्णन उपलब्ध हैं। यह वीररसपूर्ण रचना है। कृष्ण-शिशुपाल युद्ध, प्रद्युम्न-सिंहरथ युद्ध, प्रद्युम्न-कालसंवर युद्ध, प्रद्युम्न-कृष्ण युद्ध आदि का सविस्तार वर्णन हुआ है।

कृष्ण का वर्णन एक महान् शक्तिशाली नरेश के रूप में किया गया है। वे अपरिमित दलबल व साधनों से सम्पन्न थे। वे त्रिखण्डाधिपति (अर्द्ध चक्रवर्ती) राजा थे। उनकी गर्जना से पृथ्वी काँप जाती थी। वे अपने शत्रुओं के दमन में पूर्णतः समर्थ थे। यथा—

दलबल साहण गंणत अनन्त। करइ गर्ज मेदनी विलसंतु।।
तीन खण्ड चक्केसरी राउ। अरियण दल भानइ भरिवाउ ।।१.२१।।

कृष्ण का स्वरूप वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि—वे शंख, चक्र तथा गदा धारण करते हैं। बलभद्र उनके अग्रज हैं। वे अद्वितीय पराक्रम सम्पन्न हैं। सात ताल वृक्षों को एक बाण से गिराने में समर्थ हैं। वे अपने कोमल हाथों से वज्र को भी चूर-चूर कर सकते हैं। यथा—

संख चक्र गजापहण जासु, अरु बलिभद्र सहोदर तासु।
सात ताल जो बाणनि हणइ, सो नारायण नारद भणइ ।।५१।।
आपी ताहि वज्र मुदड़ी, सोहइ रतन पदारथ जड़ी।
कोमलि हाथ करइ चकचूरु, सो नारायण गुण परिपूरु ।।५२।।

पराक्रमी राजा कृष्ण अपनी तलवार हाथ में लेकर युद्धभूमि में ऐसे शोभित होते हैं जैसे मानों स्वयं यमराज उपस्थित हैं। उनके खड्ग धारण करने पर समस्त लोक आकुल-व्याकुल हो जाता है। स्वयं देवराज इन्द्र तथा शेषनाग भी व्याकुल हो जाते हैं—

तव तिहि धनहर धालिउ रालि, चन्द्र हंस कर लीयो संभालि।
बीजु समिसु चमकइ करवालु, जाणौ सु जीभ पसारै काल।
जबति खरग हाथ हरि लयउ, चन्द्र रयणि चांबइ कर गहिउ।
रथ ते उतरि चले भर जाम, तीनि भुवन अकुलाने ताम।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इंदु चंदु पणु मै खलभलउ, जाणौ गिरि पर्वतउ टलटलउ।
मन मा कहइ सुरंगिनि नारि, अवयहु रहइ कइसी मारि ।।[४०]

वीर रस के अतिरिक्त अद्‌भुत रस (युद्ध में विद्याओं के प्रयोग के वर्णन में), वीभत्स रस (युद्धोपरान्त रणभूमि के दृश्य वर्णन में), करुण रस (पुत्र-वियोग से संतप्त रुक्मिणी की दशा वर्णन में), शृंगार रस (रुक्मिणी सौन्दर्य वर्णन, कृष्ण-रुक्मिणी मिलन आदि प्रसंगों में) आदि का भी वर्णन हुआ है। अन्तिम सर्ग में नायक प्रद्युम्न द्वारा वैराग्य ग्रहण करने के वर्णन में शान्त रस का परिपाक हुआ है।

प्रद्युम्न चरित व्रजभाषा का काव्य है। व्रजभाषा के सर्वमान्य लक्षण प्रद्युम्न चरित की भाषा में पूर्णरूप से मिलते हैं। प्रद्युम्न चरित की व्रजभाषा, राजस्थानी प्रभावित है। काव्य का मुख्य छन्द चौपई है। इसके अतिरिक्त वस्तु वन्ध, ध्रुवक, दोहा, सोरठा आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। काव्य में अलंकारों का भी प्रयोग स्थान-स्थान पर मिलता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं।

वलभद्र चौपई

इस कृति के रचयिता कवि यशोधर थे। ये काष्ठा संघ के जैन सन्त थे। अपने गुरु विजयसेन की वाणी पर मुग्ध होकर तथा संसार को असार समझकर आपने वैराग्य ग्रहण कर लिया तथा आजन्म ब्रह्मचारी का जीवन विताया। इनका समय संवत् १५२० से १५६० का कहा गया है।[४१]

'वलिभद्र चौपई' १८६ पद्यों में रचित काव्य है जिसे कवि ने सन् १५२८ (सं० १५८५) में पूर्ण किया था। तत्सम्वन्धी उल्लेख कृति में इस प्रकार है—

संवत् पनर पच्यासीर स्कन्ध नगर मझारि।
भवणि अजित जिनवर तणी, ए गुण गाया सारि।।

कृति में कृष्ण के वड़े भाई वलभद्र का चरित वर्णन है। कृति की कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है—

द्वारिका पर श्रीकृष्ण का राज्य था। वलभद्र उनके वड़े भाई थे। एक वार तीर्थंकर नेमिनाथ का द्वारिका विहार हुआ। दोनों भाई नगर के अनेक प्रजाजन के साथ नेमिनाथ के दर्शनार्थ गये। नेमिनाथ से द्वारिका के भविष्य के वारे में पूछने पर उन्होंने १२ वर्ष वाद द्वीपायन ऋषि द्वारा द्वारिका-दहन की भविष्यवाणी की। १२ वर्ष वाद द्वारिका नगरी के नष्ट हो जाने पर दोनों भाई कृष्ण तथा बलराम वहाँ से चले। मार्ग में वन में सोते हुए कृष्ण को हरिण के धोखे से जराकुमार द्वारा छोड़ा तीक्ष्ण वाण लगा और वे काल को प्राप्त हुए। उस समय बलभद्र वन में पानी की खोज में गये हुए थे। लौटने पर वे वड़े शोकाकुल हुए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा विलाप करने लगे। उन्हें इतना तीव्र आघात लगा कि भाई के मोह में छह माह तक वे उनके मृतक शरीर को लिये घूमते रहे। अन्त में एक मुनि के प्रबोधन से विरक्त होकर तपस्या करते हुए उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। इसके १८९ पद ढाल, दूहा एवं चौपई छन्दों में विभक्त हैं। इस काव्य की भाषा-शैली को समझने की दृष्टि से कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं—

द्वारिका नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने उसे इन्द्रपुरी के समान बताया है। यह बारह योजन विस्तारवाली थी। वहाँ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं। अनेक धनपति एवं वीरवर वहाँ निवास करते थे। श्रीकृष्ण याचकों को मुक्त हस्त से दान देते थे—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिर तुवसि, ते देखी जनमन उलसि ॥११॥

नव खण तेर खणा प्रासाद, हह श्रेणि सम लागु वाद।
कोटीधज तिहां रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहि मणा ॥१२॥

याचक जननि देइ दान, न हीयउ हरष नहीं अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ॥१३॥

द्वारिका के विनाश तथा कृष्ण के परमधाम गमन की घटना को नेमिनाथ की भविष्यवाणी के रूप में वर्णित किया गया है—

द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संघार।
मद्य भांड जे नासि कही, तेह थकी वली जलसि सही ॥६२॥

पौरलोक सवि जलसि जिसि, वे बन्धव नीकससु तिसि।
तह्य सहोदर जराकुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ॥६३॥

यह रास उनकी अनेक कृतियों में सबसे अच्छी कृति बतायी जाती है। बलराम-कृष्ण के सहोदर प्रेम के आदर्श की प्रस्तुति इसमें बहुत सुन्दर है।

हरिवंशपुराण

प्रस्तुत कृति के रचयिता शालिवाहन हैं। उन्होंने जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (संस्कृत) के आधार पर इसकी रचना की है। इसका उल्लेख कृति की प्रत्येक सन्धि के अन्त में इस प्रकार उपलब्ध है—'इति श्रीहरिवंशपुराणसंग्रहे भव्य-समंगलकर्णे, आचार्यश्री-जिनसेन-विरचिते तस्योपदेशे श्रीशालिवाहन-विरचिते।' इस ग्रन्थ की रचना (सं० १६९३ ई० सन् १६३८) में पूर्ण हुई, कवि ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संवत् सोरहसे तहा भए, तापर पचानव गए।
माघमास कृष्णापछि जानि, सोमवार सुभवार वखाणि ॥३१७८॥

इसकी रचना के समय कवि आगरा में निवास करता था और वहीं इसकी रचना पूर्ण हुई। आगरा में तब शाहजहाँ का शासन था—

नगर आगरा उत्तम थानु, शाहजहां साहि दियै मनु भानु ॥३१८१॥

प्रस्तुत कृति की हस्तलिखित प्रतियाँ कई स्थानों पर उपलब्ध हैं।[४२]

इस कृति की १२ से २६ तक की सन्धियों में कृष्णचरित का वर्णन है। प्रथम सन्धि में कवि ने २४ तीर्थंकरों तथा सरस्वती की वन्दना की है। दूसरी और तीसरी सन्धि में तीनों लोकों के वर्णन के पश्चात् चौथी सन्धि में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती का चरित वर्णित है। ४ से ११ तक की सन्धियों में प्रथम २१ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ८ वलदेव, ८ वासुदेव तथा ८ प्रतिवासुदेव का संक्षिप्त चरितवर्णन है। इसके बाद सम्पूर्ण कृति में २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा नवम वासुदेव कृष्ण का चरित विस्तार से निरूपित है। वस्तुतः कृति की मुख्य आधिकारिक कथावस्तु इन्हीं दो शलाकापुरुषों का चरित-वर्णन है। कृष्ण के अनुज गजसुकुमाल तथा पुत्र प्रद्युम्न का चरित-वर्णन भी अवान्तर प्रसंगों के रूप में हुआ है।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित व्रजभाषा है। यह मुख्यत: दोहा, चौपाई छन्दों में रचित है।

कृष्ण के वीर श्रेष्ठ पुरुष के व्यक्तित्व का वर्णन ही कृति में मुख्यत: हुआ है। कंस की मल्लशाला में किशोर कृष्ण का पराक्रम देखिए—

चंडूर मल्ल उठ्यो काल समान,
वज्रमुष्टि दैयत समान।
जानि कृष्ण दोनों कर गहै,
फेर पाई धरती पर वहै ॥१७८०-८१॥

रुक्मिणी-हरण करते समय कृष्ण जब अपना पांचजन्य शंख फूकते हैं तो मेरु पर्वत सहित सम्पूर्ण धरामण्डल थरथरा उठता है तथा शत्रु का सैन्यदल काँपने लगता है—

लई रुक्मणि रथ चढ़ाई, पंचाइण तब पूरियो।
णि सुनि वयणु सब सैन कप्यौ महिमण्डल थर हरयो॥
मेरु कमठ तथा शेष कंप्यो, महलो जाई पुकारियो।
पुहमि राहु अवधारियो, रुक्मणि हरि लै गयो ॥१६५३॥

इस अवसर पर हुए युद्ध के ओजस्वी वर्णन में कवि द्वारा प्रयुक्त हुई भाषा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत ही समर्थ है। युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

सेशपाल अरु भीखम राउ,
पैंदल मिलै ण सूझे ठाउ।
छोरण बूंदत उछली खेह,
जाणो गरजे भांदो मेह॥
शारंगपाणि धनक ले हाथ,
शशिपालै पठउ जम साथ।
हाकि पचारि उठे दोऊ वीर,
बरसै बाण शयण घनणीर॥१६६३॥

कृष्ण तथा बलराम की वीरता और पराक्रम कृति में अनेक स्थलों पर वर्णित है।

कृष्ण का यह अद्वितीय पराक्रम उनके श्रेष्ठ अर्द्ध चक्रवर्ती राजा के स्वरूप के अनुकूल है। जरासन्ध के साथ युद्ध में उनका यह वीर स्वरूप साकार हो उठा है। जिस चक्र को जरासन्ध ने कृष्ण को मारने के लिए फेंका वही चक्र कृष्ण की प्रदक्षिणा करके उनके दाहिने हाथ पर स्थिर हो जाता है और पुनः कृष्ण द्वारा छोड़े जाने पर वही जरासन्ध का सिर काट डालता है। कवि के शब्दों में—

तब मागध ता सन्मुख गयौ,
चक्र फिराई हाथि करि लयौ।
तापर चक्र डारियो जामा,
तीनो लोक कँपीयो तामा॥
हरि को नमस्कार करि जानि,
दाहिने हाथ चढ्यो सौ आनि।
तब णारायण छोड्यो सोइ,
मागध टूंक रक्त-सिर होइ॥

कृष्ण के उक्त वीर स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त प्रस्तुत कृति में बालक कृष्ण के दूध-दही खाने-फैलाने का भी वर्णन हुआ है। यथा—

आपुन खाई ग्वाल धर देइ,
घर की क्षार विराणो लेई।
घर-घर बासण फोड़े जाई।
दूध-दही सब लेहि छिडाई॥१७०७-८॥

नेमीश्वर रास

इसके रचयिता नेमिचन्द्र हैं। इसकी रचना ई० सन् १७१२ (१७६९ वि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सं०) में हुई। कृति के अन्त में कवि ने अपना विस्तृत परिचय दिया है जिसमें अपनी गुरु-परम्परा, कृति का रचनाकाल, रचनास्थान आदि का संकेत इस प्रकार किया है—

अंबावती सुमथान सवाई जै सिंह महाराज ई।
पातिसाह राषै मान, राज करै परिवार स्युं॥

अंबावती नगरी (आमेर-जयपुर) में, जहाँ कि राजा सवाई जयसिंह का राज्य है, जिनका कि बादशाह भी सम्मान करता है, इस कृति की रचना हुई।

रचनाकाल का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

सतरासै गुणहत्तरे सुदि आसोज दसै रवि जाणि तौ।
रास रच्यौ श्री नेमि को वुधिसार मैं कियो वषान तौ॥

अर्थात् संवत् १७६९ आसोज शुक्ला १०, रविवार को इसकी रचना पूर्ण हुई। कवि ने अपने गुरु का नाम जगतकीर्ति बताया है। ये मूलसंघ, बलात्कार गण सरस्वतीगच्छ के आचार्य थे। प्रस्तुत कृति की रचना हरिवंशपुराण के आधार पर की गई है—

हरिवंश की मैं बारता, कही विविध प्रकार।
नेमिचन्द्र की बीनती, कवियण लेहु सुधार॥

कृति में हरिवंशपुराण (जिनसेन) के अनुसार ही कृष्ण का चरित-वर्णन हुआ है। कृति की कथावस्तु ३६ अधिकारों (सर्ग सूचक शब्द) में विभक्त है। कृति का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है। श्रेष्ठ पुरुषों की वन्दना प्रथम दो अधिकारों में की गयी है। तृतीय अधिकार से कथावस्तु का प्रारम्भ होता है। कृष्ण-जन्म, उनकी बाल-क्रीड़ाएं, कंस-वध, यादवों का द्वारिका निवास, रुक्मिणी-हरण व शिशुपाल-वध, नेमिनाथ का जन्म, कृष्ण-जरासन्ध युद्ध, द्रौपदी हरण, कृष्ण का द्रौपदी को वापस लाना, कृष्ण का पाण्डवों से कुपित होना तथा पाण्डवों का हस्तिनापुर से निर्वासन, नेमिनाथ का गृह-त्याग, तप व कैवल्यज्ञान प्राप्ति, उनके द्वारिका आगमन के प्रसंग, कृष्ण के पारिवारिक सदस्य—रानियों-पुत्रों आदि का उनके पास दीक्षा लेना, द्वारिका विनाश, कृष्ण का परमधाम-गमन, बलराम का तप व मुक्ति आदि प्रसंगों का क्रमशः वर्णन हुआ है। कृति के प्रारम्भ में प्रमुखतः कृष्ण-चरित का वर्णन है तथा अन्तिम अधिकारों में नेमिनाथ चरित का।

कृष्ण कृति के प्रमुख पात्र हैं। कृति में अधिकतर उनके वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

कान्ह गयो जब चौक में, चाण्डूर आयो तिहि बार।
पकड़ि पछाड़्यो आवतो, चाण्डूर पहुंच्यो यम द्वार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कंस कोप करि उठ्यो, पहुंच्यो जादुराय पैं।
एक पलक में मारियो. जम-घरि पहुंच्यो जाय तो ॥
जैं जैं कार सवद हुआ, बाजा वज्या सार।
कंस मारि घीस्यो तवैं, पलक न लाइ बार ॥

कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन धारण की घटना का कवि ने इस प्रकार उल्लेख किया है—

कैसो मन में चिन्तवे, परवत गौरधन लीयो उठाय।
चिटी आंगुली ऊपरे, तलिउ या सव गोपी-गाय ॥

कृति के अन्तिम अंश में कृष्ण की धर्म विषयक रुचि तथा नेमिनाथ के प्रति श्रद्धाभाव का वर्णन है। कवि के शब्दों में—

नमस्कार फिरि-फिरि कियो, प्रश्न कियो तब केशोराय।
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को धर्म अधर्म कह्यो जिनराय ॥

कृति में कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन द्रष्टव्य है। इस रूप में बालक कृष्ण के गोपाल वेष का तथा दधि-माखन खाने व फैलाने का वर्णन हुआ है। यथा—

माखण खायरु फैलाय, मात जसोदा बांधे आणि तौ।
डरपायो डरपै नहीं माता तणीय न मानै काणि तौ।

उनका गोपाल वेश-वर्णन भी देखिए—

काना कुण्डल जगमगे, तन सोहे पीताम्बर चीर तौ।
मुकुट विराजे अति भलो, बंसी बजावे स्याम शरीर तौ।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। तद्भव शब्दों का बाहुल्य है। दोहा, सोरठा छन्दों का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है।

खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण व उत्तरपुराण

कृष्णचरित से सम्बन्धित उक्त दोनों हिन्दी काव्य-कृतियों की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ जैन ग्रन्थ-भण्डारों में उपलब्ध हैं। ये दोनों कृतियाँ क्रमशः जिन-सेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण (संस्कृत) तथा गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण (संस्कृत) की शैली पर रचित हैं। हरिवंशपुराण की रचना संवत् १७८० (सन् १७२३) तथा उत्तरपुराण की रचना संवत् १७९९ (सन् १७४२) में पूर्ण हुई, ऐसा उल्लेख स्वयं ग्रन्थकर्ता ने ग्रन्थों की समाप्ति पर किया है।

इन ग्रन्थों के रचयिता श्री खुशालचन्द काला खण्डेलवाल जाति के दिगम्बर जैन थे। इनका जन्म टोड़ा (जयपुर) नामक ग्राम में हुआ था। बाद वे सांगानेर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(जयपुर) में आकर बस गये। उनका शेष जीवन सांगानेर में ही व्यतीत हुआ। यहीं पर उन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थों की रचना की थी। कवि के सम्बन्ध में यह जानकारी उत्तरपुराण में उपलब्ध है।[४३]

हरिवंशपुराण तथा उत्तरपुराण में परम्परागत जैन पौराणिक कथा-वस्तु का वर्णन हुआ है। कथावस्तु व वर्ण्य विषयों का आधार संस्कृत पुराण ग्रन्थ हैं। तदनुसार हरिवंशपुराण में तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा उनके समकालीन कृष्ण, बलराम, जरासन्ध आदि शलाकापुरुषों का चरित वर्णित है। उत्तरपुराण में ऋषभदेव के अतिरिक्त सभी अन्य तेईस तीर्थंकरों व उनके समकालीन शलाका-पुरुषों के चरित का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

दोनों कृतियों में बोलचाल की सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है। दोनों ही प्रसाद गुण सम्पन्न रचनाएँ हैं। चौपई, चौपाई, दोहा, सोरठा आदि मात्रिक छन्द कृतियों में प्रमुखता से प्रयुक्त हुए हैं। सर्ग के लिए सन्धि शब्द का प्रयोग है।

आलोच्य कृतियों में कृष्ण का परम्परागत वीर श्रेष्ठ पुरुष का जैन मान्यता का व्यक्तित्व वर्णित है। दोनों कृतियों से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

बालक कृष्ण गोकुल में खेलते-कूदते, अनेक पराक्रमपूर्ण काम करते बड़े हो रहे थे। कंस को जब किसी निमित्तज्ञानी से यह जानकारी मिली कि उनका शत्रु गोकुल में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है तो उसने अपने पूर्व भव में सिद्ध की हुई देवियों का, कृष्ण का प्राणान्त करने के लिए, आह्वान किया। देवियों ने जो अनेक प्रयत्न किये, उनमें एक प्रयत्न मूसलाधार वर्षा करके कृष्ण सहित समस्त गोकुल को डुबा देने का भी था, परन्तु पराक्रमी कृष्ण ने गोवर्द्धन को ही उठा लिया और इस प्रकार गोकुल की रक्षा की। देवियों के समस्त प्रयत्न निष्फल हो गये। कवि के वर्णनानुसार—

देवां वन में जाय मेघ तनी बरषा करी।
गोवरधन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाव सौं॥

प्रयत्न की इस निष्फलता के बाद, कंस ने कृष्ण को मल्ल-युद्ध का आमन्त्रण दिया। मल्ल-युद्ध में आने के अवसर पर उन्हें कुचल कर मार डालने के लिए मदमस्त हाथी छुड़वा दिया। पराक्रमी, महान् बलशाली व धैर्यवान कृष्ण ने हाथी के दाँत उखाड़ लिये और उसे मार कर भगा दिया। सामने आने पर अपने से दुगने मल्ल को फिराकर दे मारा। और अन्त में, क्रोधित हुए कंस को मारने के लिए अपनी ओर आते देख, उसे पैर पकड़, पक्षी के समान फिराकर पृथ्वी पर दे मारा। अपने बलवान शत्रु को मार कर पराक्रमी कृष्ण उस सभा-मण्डप में अत्यधिक शोभित हुए। कवि ने अपने उत्तरपुराण में कृष्ण के इस वीर स्वरूप का बड़े उत्साह से वर्णन किया है। यथा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाके सम्मुख दोड्यो जाय। दंत उपारि लये उमगाय ॥
ताही दंत थकी गज मारि। हस्ति भाजि चली पुर मझारि ॥
ताहि जीति शोभित हरि भए। कंस आप मल्ल मृति लखि लए ॥
रुधिर प्रवाह थकी विपरीत। देख क्रोध धरि करि तजि नीति ॥
आप मल्ल के आयो सोय। तब हरि वेग अरि निज जोय ॥
चरण पकरि तब लयो उठाय। पंखी सन उत ताहि फिराय ॥

फेरि धरणि पटक्यो तबै कृष्ण कोप उपजाय।
मानूं यम राजा तणी, सो ले भेंट चढ़ाय ॥

जरसन्ध के साथ हुए युद्ध में कृष्ण का यही पराक्रम अपने पूर्णरूप में प्रकट हुआ है। दोनों कृतियों में कृष्ण की वीरता तथा पराक्रम के ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं।

नेमिचन्द्रिका

नेमिचन्द्रिका कवि मनरंगलाल की रचना है। ग्रन्थ के अन्त में कृतिकार ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार कवि कान्यकुब्ज (कन्नौज) निवासी पल्लीवाल जैन था। उसके पिता का नाम कनोजी लाल था। कवि ने अपने मित्र गोपालदास के आग्रह पर प्रस्तुत कृति की रचना की थी। अपनी कृति की कथा-वस्तु के लिए उसने जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण को आधार बनाया। कृति का रचनाकाल कवि के उल्लेखानुसार वि०सं०१८८१ (सन् १८२३) है।[४४]

कृति में कुल ३८१ छन्द हैं। प्रारम्भ में जिनेश्वर व गणेश की वन्दना है। तत्पश्चात् क्रमशः द्वारिका नगरी का वर्णन, वहाँ के शक्तिसम्पन्न वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन, नेमिनाथ के माता-पिता का वर्णन, नेमिजन्म और उनकी बाल-क्रीडाएँ, नेमि की सुन्दरता एवं वीरता, नेमि की बरात का वर्णन, नेमिनाथ का वैराग्य, केवलज्ञान तथा मोक्ष-प्राप्ति का वर्णन हुआ है। वस्तुतः यह कृति नेमिनाथ की परम्परागत कथावस्तु पर आधारित खण्डकाव्य की कोटि की रचना कही जा सकती है।

कृति की भाषा सामान्य जन द्वारा प्रयुक्त सरल हिन्दी है। रचना दोहा, सोरठा, चौपाई, अडिल्ल, भुजंगप्रयात आदि छन्दों में है। शान्त रस में कृति का समाहार हुआ है। शान्त के अतिरिक्त करुण तथा विप्रलंभ शृंगार के उदाहरण द्रष्टव्य हैं। सांसारिक अस्थिरता एवं झूठे स्वार्थ से प्रेरित विरक्ति के भावों से निर्वेद की पुष्टि हुई है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

अथिर वस्तु जितनी जग मांहि। उपजत विनसत संसय नाहि ॥
स्वारथ पाय सकल हित करे। विन स्वारथ काउ हाथ न धरे ॥

ऐसे ही भावों से प्रेरित होकर कृति के नायक नेमिकुमार संसार से विरक्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं। तथा कठोर तप से अपने सभी कर्मों को क्षय कर निर्वाण अवस्था को प्राप्त होते हैं।

कृष्ण वासुदेव के चरित्र वर्णन में कवि ने उनकी वीरता, पराक्रम तथा श्रेष्ठ सामर्थ्य से युक्त नरेश के रूप का वर्णन किया है।

वीर कृष्ण ने कालिय नाग का मर्दन किया। अत्याचारी कंस को मारकर उसके पिता उग्रसेन को सिंहासनासीन किया। शिशुपाल तथा शक्तिशाली जरासन्ध पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार अपने कार्यों द्वारा अनीति के मार्ग को निरावृत किया। कृष्ण के इन कार्यों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है—

> नाग साधि कर के मुरलीधर। सहस पत्र ल्याये इंदीवर ॥
> कंस नास कीन्हों छिन माहि। उग्रसेन कहं राज्य कराहि ॥
> जीत लीन शिशुपाल नरेश। जरासन्ध जीतो चक्रेस ॥
> इत्यादिक बहु कारण करे। सकल अनीति मार्ग तिन हरे ॥

ऐसा पराक्रमी, सामर्थ्यवान तथा जरासन्ध जैसे चक्रधारी नरेश का हन्ता कृष्ण भला क्यों नहीं भारतभूमि के सभी राजाओं में श्रेष्ठ व पूजनीय होगा! कवि के अनुसार, भारतभूमि के सभी नृपतिगण उनके चरणों के सेवक थे तथा स्वयं देवगण उनकी आज्ञा पालन करते थे। यथा—

> सकल भूप सेबत तिन पाय। देव करत आज्ञा मन माय ॥

इस प्रकार अपने समकालीन राज-समाज में पूजनीय, पराक्रमी और वीर राजपुरुष कृष्ण का स्वरूप-वर्णन इस कृति की प्रमुख विशेषता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन साहित्य में कृष्ण-कथा

जैन-कथा की प्राचीनता

धर्म-प्रचार में लोक-प्रचलित कथाओं, आख्यानों, जनश्रुतियों का उपयोग प्रायः किया जाता रहा है। इसी प्रकार लोकविश्रुत महापुरुषों के जीवन-सन्दर्भों का उल्लेख भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा है। श्रीकृष्ण के जीवन-सन्दर्भों का जैन-परम्परागत साहित्य में ग्रहण भी इसी क्रम में हुआ है। कृष्ण-कथा का जो स्वरूप तीर्थंकर महावीर के समय में प्रचलित रहा होगा, उसका उन्होंने अपने धर्म-प्रचार में उपयोग किया होगा। अतः आगमिक कृतियों में कृष्ण-कथा के जो सन्दर्भ उपलब्ध हैं, बहुत सम्भव है वे ई० पू० छठी शताब्दी में अर्थात् तीर्थंकर महावीर के समय में इस रूप में प्रचलित रहे हों।

आगमिक साहित्य का जो रूप आज विद्यमान है वह ई० सन् पश्चात् ४५३-४६६ के मध्य बल्लभी में आयोजित एवं आचार्य देवर्द्धिगणी की अध्यक्षता में सम्पन्न श्रमण संघ द्वारा संकलित किया गया था, अतः स्वाभाविक ही, महावीर स्वामी के लगभग एक हज़ार वर्ष पश्चात् सम्पादित व संकलित कृतियों में कृष्ण से सन्दर्भित प्रसंग परिवर्धित व परिवर्द्धित हो गये होंगे। फिर भी श्रीकृष्ण के जीवनचरित का जो रूप जैन आगम साहित्य में उपलब्ध है, वह पाँचवीं शताब्दी ई० का तो निर्विवाद है।

जैनागमों में कृष्ण-कथा

आगमिक कृतियों में कृष्णचरित किसी क्रमबद्ध रूप में उपलब्ध नहीं है। कृष्ण से सम्बन्धित प्रसंग विविध कृतियों में यथा सन्दर्भ वर्णित हैं। इन कृतियों में ज्ञातृधर्मकथा, अन्तकृद्दशा, प्रश्न-व्याकरण, उत्तराध्ययन तथा निरयावलिका मुख्य हैं। इन में वर्णित प्रसंगों के आधार पर श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में निम्नलिखित तथ्यों की जानकारी प्राप्त होती है—

(१) सोरियपुर नगर में वसुदेव नाम के राजा थे। उनकी दो भार्याएँ—रोहिणी और देवकी थीं। इनसे उनके बलराम तथा केशव (कृष्ण) दो पुत्र थे।[1]

(२) वसुदेवादि दस भाई तथा दो बहिनें थीं। भाई थे—समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर, हिमवान, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र तथा वसुदेव। बहिनें थीं—कुन्ती और माद्री।[2]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) कृष्ण ने अपने जीवन-काल में अनेक वीरतापूर्ण कृत्य किये। इन कृत्यों में अरिष्टबैल का वध करना, यमलार्जुन को नष्ट करना, कालियनाग का दर्प-हरण करना, महाशकुनि और पूतना को मारना तथा चाणूर, कंस और जरासन्ध का वध करना सम्मिलित है।[३]

(४) कृष्ण द्वारिका के महान् महिमावान वासुदेव राजा थे। अनेक अधीनस्थ राजाओं, ऐश्वर्यवान नागरिकों सहित वैताढ्यगिरि (विन्ध्याचल) से सागर पर्यन्त दक्षिण भरत क्षेत्र उनके प्रभाव में था।[४]

(५) कृष्ण वासुदेव, बाइसवें जैन तीर्थंकर अर्हंत अरिष्टनेमि के चचेरे भाई थे। अरिष्टनेमि के प्रति उनकी स्वाभाविक श्रद्धा थी। आगमिक कृतियों में अरिष्टनेमि के द्वारिका-आगमन का तथा कृष्ण का सदलबल उनकी धर्म-सभा में उपस्थित होने का प्रसंग अनेक बार अनेक रूपों में वर्णित हुआ है। इन प्रसंगों में कृष्ण के परिवार-जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिकों का अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेने का वर्णन भी है।

(६) यादवों का विनाश मदिरापान से उन्मत्त हो परस्पर लड़ने से हुआ। द्वारिका नगरी अग्नि में भस्म हो गयी तथा कृष्ण का प्राणान्त जरत्कुमार के बाण लगने से कौशाम्बी वनप्रदेश में हुआ।[५]

उक्त सन्दर्भों के आधार पर जैनागमों में कृष्णकथा का जो स्वरूप प्रकट होता है, वह इस प्रकार है—कृष्ण वसुदेव-देवकी के पुत्र थे। वसुदेवजी दस भाई थे तथा ये सोरियपुर के राजा थे। कृष्ण अत्यन्त वीर व साहसी पुरुष थे। बलराम उनके भाई थे। कृष्ण ने मथुरा के राजा कंस का वध किया। कालान्तर में उन्होंने अपने बाहुबल से द्वारिका में यादवों का शक्तिशाली राज्य स्थापित किया तथा समस्त दक्षिण भरतक्षेत्र में अपने प्रभाव का विस्तार किया। वे राजा वासुदेव के रूप में अपने समकालीन राजाओं में सर्वश्रेष्ठ व पूजनीय मान्य हुए। उन्होंने मगध के शक्तिशाली राजा जरासन्ध का भी वध किया। रुक्मिणी उनकी प्रमुख रानी थी। प्रद्युम्न, साम्ब आदि उनके अनेक पुत्र थे। कृष्ण के चचेरे भाई अरिष्टनेमि बाइसवें जैन तीर्थंकर रूप में मान्य हुए। कृष्ण इनकी धर्म सभाओं में उपस्थित होनेवाले प्रमुख राजपुरुष थे। कृष्ण के परिवार-जन में से अनेक ने अरिष्टनेमि से वैराग्य की दीक्षा ग्रहण की। यादवों का विनाश सुरापान से हुआ। द्वारिका नगरी अग्नि में नष्ट हो गयी तथा कृष्ण का परलोक-गमन जरा नामक शिकारी के बाण लगने से हुआ।

जैन कृष्ण-कथा का विकसित रूप : हरिवंशपुराण की कृष्ण-कथा

जैन साहित्य में कृष्णचरित का यही मूल स्वरूप है। प्राकृत भाषा में निबद्ध जैनागमिक कृतियों के इतस्ततः बिखरे प्रसंगों के आधार पर हमने यह रूपरेखा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत की। ये कृतियाँ जैनों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ही मान्य हैं। दिगम्बर साहित्य में कृष्णचरित की दृष्टि से जिनसेन का हरिवंशपुराण (संस्कृत) महत्त्वपूर्ण कृति है। वस्तुत: सस्कृत पुराणों व चरित-ग्रन्थों में कृष्ण-चरित अपेक्षाकृत क्रमबद्ध व विस्तार से वर्णित है। इन कृतियों में वर्णित कृष्णचरित का मूल स्वरूप लगभग वही है जो ऊपर उद्धृत किया गया है। परन्तु कथा प्रसंगों को विस्तार दे दिया गया है। साथ ही, पूर्वापर सम्बन्ध वनाये रखने के लिए अन्य प्रसंग इधर-उधर से लेकर उन्हें अपने साँचे में ढाल लिया गया है। इस स्थिति के स्पष्टीकरण के लिए हम जिनसेन कृत हरिवंशपुराण में वर्णित कृष्ण-चरित की आधिकारिक कथावस्तु के प्रमुख सन्दर्भों का यहाँ उल्लेख कर रहे हैं। जिनसेन द्वारा वर्णित कृष्णचरित जैन साहित्य में अत्यधिक महत्त्व का स्थान रखता है। बाद की संस्कृत, अपभ्रंश व हिन्दी में रचित अनेक कृतियों के लिए प्राय: इसी पुराण की कथावस्तु आधार रही है—

हरिवंशपुराण में कृष्णकथा संक्षेप में इस प्रकार है—

हरिवंश में राजा यदु हुआ, जिसके वंशज यादव कहलाये। यदुवंशी राजा सौरी (शूर) ने सौरीपुर नगर बसाया तथा वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। सौरी के दो पुत्र थे—अन्धक व भोजक। अन्धक को उत्तराधिकार में सौरीपुर का प्रदेश मिला तथा भोजक को मथुरा का। अन्धक के दस पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थीं। दसों पुत्र दशार्ह राजा के रूप में जाने जाते थे। ये सभी सौरीपुर में रहते थे। भोजक के उग्रसेन, महासेन, देवसेन (देवक) आदि पुत्र हुए। भोजक का वड़ा पुत्र उग्रसेन मथुरा का राजा वना।

अन्धक के दस पुत्रों में सबसे बड़े समुद्रविजय थे तथा सबसे छोटे वसुदेव। वसुदेव अत्यन्त सुन्दर थे। उन्होंने अनेक विवाह किये।

वसुदेव शस्त्रविद्या के भी महान् ज्ञाता थे। वे सौरीपुर में रहते समय अन्धक व भोजक कुलों के राजपुत्रों को शस्त्रविद्या की शिक्षा देते थे। इन राजपुत्रों में उग्रसेन का पुत्र कंस भी था। एक समय राजा वसुदेव कंस आदि अपने शिष्यों के साथ राजा जरासन्ध के राजगृह गये। उस समय जरासन्ध की ओर से यह घोषणा की गयी थी कि जो वीर पुरुष सिंहपुर के स्वामी राजा सिंहरथ को जीवित पकड़कर मेरे समक्ष उपस्थित करेगा, उसके साथ में अपनी पुत्री जीवद्यशा का विवाह करूँगा और उसका इच्छित प्रदेश भेंट में दूंगा। वसुदेव ने सिंहरथ को पकड़ने का निश्चय किया।

सिंहरथ के साथ हुए भयंकर युद्ध में वसुदेव के रण कौशल एवं कंस के चातुर्य से सिंहरथ परजित हुआ। उसे जीवित पकड़कर जरासन्ध के समक्ष प्रस्तुत किया गया। जरासन्ध ने प्रसन्न होकर पुत्री का विवाह वसुदेव से करना चाहा। परन्तु वसुदेव ने स्वयं यह विवाह न करके कंस के साथ जरासन्ध की पुत्री का विवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करा दिया। इस विवाह से शक्तिशाली बने कंस ने बाद में अपने पिता राजा उग्रसेन को कैद में डालकर मथुरा का राज्य हथिया लिया।

कंस वसुदेव का अत्यधिक उपकार मानता था। अतः एक दिन वह बड़ी भक्तिपूर्वक वसुदेव को मथुरा लिवा लाया। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकी (राजा देवक की पुत्री) का विवाह उनके साथ बड़े उत्साहपूर्वक सम्पन्न कराया। विवाह के पश्चात् कंस के बहुत आग्रह के कारण वसुदेव मथुरा में ही रहे आये।

एक दिन अतिमुक्तक मुनिराज से यह जानकर कि देवकी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र न केवल उसके पति (कंस) को अपितु पिता (जरासन्ध) को भी घातक होगा, जीवद्यशा ने यह समाचार कंस को दिया। तीक्ष्ण बुद्धि के धारक कंस ने शीघ्र ही उपाय सोचकर वसुदेव से यह वचन माँग लिया कि 'प्रसूति' के समय देवकी का निवास मेरे ही घर में रहा करे।

तदनंतर देवकी ने क्रमशः तीन युगल-पुत्रों को जन्म दिया। प्रत्येक बार इन्द्र की आज्ञा से सुनैगम नामक देव जन्मते ही देवकी-पुत्रों को सुभद्रिल नगर के सेठ सुदृष्टि की अलका नामकी सेठानी के यहाँ पहुँचा आया तथा उसके प्रसव में उत्पन्न मृतक युगल-पुत्रों को देवकी के प्रसूतिगृह में रख आया। शंका युक्त कंस ने तीनों ही बार मृतक युगलों को शिला पर पछाड़ दिया। देवकी के छहों पुत्र—नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न तथा जितशत्रु सेठानी अलका के यहाँ पलते हुए वृद्धि को प्राप्त हुए।

एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में देवकी ने निम्नलिखित सात पदार्थ स्वप्न में देखे—(१) उगता हुआ सूर्य, (२) पूर्ण चन्द्रमा, (३) दिग्गजों द्वारा अभिषिक्त लक्ष्मी, (४) आकाशतल से नीचे उतरता विमान, (५) ज्वालाओं से युक्त अग्नि, (६) ऊँचे आकाश में किरणों से युक्त देवध्वज और (७) अपने मुख में प्रवेश करता हुआ सिंह। स्वप्न का फल जानकर वसुदेव ने देवकी को बताया कि उसके गर्भ से एक ऐसे पुत्र का जन्म होगा जो महान् प्रतापी, स्वरूपवान, राज्याभिषेक से युक्त, अत्यन्त कान्तिवान, स्थिर प्रकृति और निर्भय तथा वीर होगा।

देवकी के इस सातवें गर्भ से कृष्ण का जन्म हुआ। कृष्ण का जन्म सातवें मास में ही हो गया था। उत्पन्न होते ही वसुदेव उसे वृन्दावन ले गये तथा अपने विश्वासपात्र गोप नन्द की पत्नी यशोदा के पास उसे छोड़ आये तथा बदले में तभी उत्पन्न यशोदा की पुत्री को ले आये और उसे देवकी को दे दिया। कन्या को देखकर कंस का क्रोध यद्यपि दूर हो गया था फिर भी उसने हाथ से मसलकर उसकी नाक चपटी कर दी।

बालक कृष्ण सुखपूर्वक बढ़ने लगा। एक दिन कंस को किसी निमित्तज्ञानी से यह जानकारी मिली कि उसका शत्रु कहीं अन्यत्र बढ़ रहा है। उसने तीन दिन का उपवास कर अपने पूर्व भव के तप से सिद्ध हुई देवियों का आह्वान किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उन्हें अपने दुश्मन का पता लगाकर मारने का आदेश दिया । उसमें से एक देवी ने भयंकर पक्षी का, दूसरी ने पूतना धाय का, तीसरी ने शकट का, चौथी-पाँचवी ने यमलार्जुन का तथा छठी ने बैल का रूप धारण कर कृष्ण को मारने का प्रयत्न किया । परन्तु वे सभी बालक कृष्ण द्वारा प्रताड़ित हुईं। सातवीं देवी ने पाषाणमयी तीव्र वर्षा से कृष्ण को मारना चाहा । तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत के द्वारा समस्त गोकुल की रक्षा की ।

तभी मथुरा में तीन पदार्थ प्रकट हुए—(१) सिंहवाहिनी नागशय्या, (२) अजितंजय धनुष तथा (३) पाञ्चजन्य शंख । कंस को ज्योतिषियों ने बताया कि जो कोई नागशय्या पर चढ़कर धनुष पर डोरी चढ़ा दे तथा पञ्चजन्य शंख को फूँक दे, वही उसका शत्रु है । कंस ने इस बात को गुप्त रखकर यह प्रचारित करवाया कि जो भी उक्त कार्य पूरा करेगा उसे कंस अपना महान् मित्र समझेगा तथा उसके लिए अलभ्य इष्ट वस्तु भेंट करेगा । कंस की इस घोषणा से अनेक नृपगण मथुरा आये परन्तु उसमें से कोई भी घोषित कार्य सम्पन्न नहीं कर पाया । एक दिन कंसपत्नी जीवद्यशा का भाई गोकुल आया और वहाँ कृष्ण का अद्भुत पराक्रम देख उसे साथ ले मथुरा पहुंचा । कृष्ण ने स्वाभाविक शय्या के समान ही नागशैय्या पर आरोहण किया, धनुष को प्रत्यञ्चा युक्त किया तथा शंख को फूंक दिया । कृष्ण का यह पराक्रम देख उनके बड़े भाई बलदेव को कंस से आशंका हो गयी । अतः उन्होंने बड़ी चतुरता से अपने पक्ष के अनेक लोगों को कृष्ण के साथ कर दिया ।

अब कंस कृष्ण के विनाश का उपाय करने लगा । गोपों को आज्ञा हुई कि कालियनाग से युक्त ह्रद से कमल लाकर उपस्थित करें । कृष्ण ने कालियनाग का मर्दन किया तथा कमलदलों के साथ गोपों को कंस की सेवा में भेजा। कंस ने मल्लयुद्ध के लिए कृष्ण की अगुवाई में गोपों को आमन्त्रित किया । इस मल्लयुद्ध में अत्यधिक शौर्य का प्रदर्शन करते हुए कृष्ण ने चाणूर तथा बलराम ने मुष्टिक नामक मल्ल को पछाड़ दिया । इससे कुपित होकर जब कंस तलवार हाथ में लेकर कृष्ण की ओर लपका तो कृष्ण ने उसके हाथ से तलवार छीन ली तथा उसे भी पछाडकर मार डाला । तदनन्तर यादवों के परामर्श से कंस के पिता राजा उग्रसेन को मथुरा के राज्यसिंहासन पर आसीन किया गया ।

कंस की पत्नी जीवद्यशा ने अपने पिता मगधराज जरासन्ध को, यादवों तथा कृष्ण द्वारा किए गये कंस-बध का अत्यधिक विलाप करते हुए विवरण दिया, जिससे क्रोधित होकर जरासन्ध ने अपने पुत्र कालयवन के साथ एक बड़ी सेना भेजकर यादवों को नष्ट करने का आदेश दिया । उसके मारे जाने पर अपने भाई अपराजित को भेजा । वह भी यादवों के हाथ युद्ध में मारा गया । इससे क्रोधित होकर जरासन्ध ने अपने पक्ष के अनेक राजाओं को एकत्र कर यादवों को दण्डित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने के लिए स्वयं कूच करने का निश्चय किया, तब अन्धकवंशी तथा भोजकवंशी सभी यादवों के प्रमुख पुरुषों ने मन्त्रणा कर शौरीपुर छोड़ देने का निश्चय किया। वहाँ से चलकर पश्चिमी समुद्र तट पर उन्होंने द्वारिका पुरी को अपनी राजधानी बनाया। कृष्ण के प्रताप से पश्चिम के अनेक राजा उनके वशवर्ती हो गये। कृष्ण वहाँ अनेक राजकन्याओं से विवाह कर सुखपूर्वक रहने लगे। वहाँ रहते हुए उन्होंने नारद की सूचना पाकर कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की अत्यन्त रूपवती कन्या रुक्मिणी का हरण कर उससे विवाह किया। रुक्मिणी के लिए निश्चित किए गए वर राजा शिशुपाल का भी युद्धभूमि में हनन किया।

कृष्ण की रानियों में रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती, गान्धारी आदि थीं। इन रानियों से उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें प्रद्युम्न, साम्ब, भानु, सुभानु, भीम, महाभानु, महासेन, अकम्पन, उदधि, गौतम, प्रसेनजित्, भरत, शंख आदि प्रमुख थे। इस प्रकार कृष्ण द्वारिका में ऋद्धि-सिद्धि से युक्त होकर राज कर रहे थे। तभी एक दिन एक वणिक अपना ख़रीदा हुआ माल बेचने के उदेश्य से बहुत-सी अमूल्य मणियाँ लेकर राजा जरासन्ध से मिला। उन मणियों को देखकर जरासन्ध ने उससे पूछा कि ये मणियाँ तुम कहाँ से लाये हो। वणिक ने उत्तर में जब द्वारकापुरी तथा वहाँ के महान प्रतापी राजा कृष्ण एवं यादवों का वर्णन किया तो जरासन्ध अत्यन्त कुपित होकर यादवों तथा कृष्ण को नष्ट करने की योजना बनाने लगा। उसने अजितसेन नामक अपने दूत को द्वारिका भेजकर यादवों को अधीनता स्वीकार करने अथवा युद्धभूमि में सामना करने का संदेश भेजा। यादवों ने भी जरासन्ध का युद्ध का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और अपनी तैयारी आरम्भ करदी।

कुरुक्षेत्र में यादवों और जरासन्ध की सेना में बड़ा भीषण संग्राम हुआ। दोनों पक्षों से अनेक राजाओं ने अपनी सेनाओं सहित इस युद्ध में भाग लिया। युद्ध में कृष्ण द्वारा जरासन्ध का वध हुआ। इस अवसर पर सन्तुष्ट हुए देवों ने घोषणा की कि वसुदेव के पुत्र कृष्ण नौवें वासुदेव हैं और उन्होंने चक्रधारी हो कर द्वेष रखने वाले प्रतिशत्रु जरासन्ध को उसी के चक्र से युद्ध में मार डाला है।[६] तत्पश्चात् राजाओं ने अतिशय प्रसिद्ध कृष्ण तथा बलदेव को अर्ध भरतक्षेत्र के स्वामित्व पद पर अभिषिक्त किया।[७] अपनी अनेक रानियों से सेवित कृष्ण द्वारकापुरी में राज्य भोग करते हुए सुखपूर्वक अनेक वर्षों तक जीवित रहे।

एक समय शाम्ब आदि यादव कुमारों ने अत्यधिक सुरापान से मत्त होकर तपस्वी पारासर के पुत्र ब्रह्मचारी द्वैपायन को निर्दयता पूर्वक मारा डाला। इससे क्रुद्ध होकर उसने यादवगण सहित द्वारिका को जला देने का निदान किया। द्वारिका अग्नि में भस्म हो गयी। शक्तिशाली यादव परस्पर युद्ध में लड़ मरे। इस विनाश से बचे कृष्ण तथा बलराम दुखी मन पाण्डवों के पास पाण्डु मथुरा की ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चले।[८] मार्ग में कौशाम्वी वन में कृष्ण को प्यास लगी। बलदेव पानी लेने गये और कृष्ण पीताम्बर ओढ़कर सो गये। इसी समय मृग की आशंका से जराकुमार द्वारा चलाये गये बाण से कृष्ण का प्राणान्त हो गया। पानी लेकर लौटने पर बलदेव ने मोह-वश कृष्ण को प्रगाढ़ निद्रा में सोया जाना। तब बलदेव उन्हें अपने कंधे पर लिये छह मास तक घूमते रहे। देवताओं के प्रतिवोध से उनका मोह दूर हुआ और उन्होंने कृष्ण का तुंगी गिरि पर दाह संस्कार किया। इस घटना से वे संसार से विरक्त हो गये। महान् तप के पश्चात् उन्होंने सिद्धत्व प्राप्त किया।

(ग) जैन कथा : अवान्तर प्रसंग

जैन कृष्ण कथा के कतिपय अवान्तर प्रसंग साहित्य वर्णन की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण व लोकप्रिय रहे हैं। ये प्रसंग है—

(१) अरिष्टनेमि-चरित
(२) गजसुकुमाल-चरित
(३) प्रद्युम्न-चरित
(४) पाण्डव-चरित

इन प्रसंगों को आधार बनाकर विभिन्न भाषाओं में अनेक जैन साहित्यिक कृतियों का प्रणयन हुआ है। इन कृतियों में द्वारिका के शक्तिशाली राजा कृष्ण वासुदेव के वैभव व शक्ति-सामर्थ्य का वर्णन है। प्रसंग संक्षेप में निम्न प्रकार है—

(१) अरिष्टनेमि चरित

कृष्ण के ताऊ महाराजा समुद्रविजय की महारानी शिवादेवी की कुक्षि से श्रावण शुक्ला पंचमी को अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। उनका जन्म यादवों की राजधानी शौर्यपुर में हुआ। जिस समय यादवों ने शौर्यपुर तथा मथुरा से निष्क्रमण कर पश्चिमी समुद्र तट की ओर प्रयाण किया उस समय अरिष्टनेमि की बाल्यावस्था थी। यादवों के द्वारिका नगरी में बस जाने के बाद बालक अरिष्टनेमि वहाँ सभी परिवार-जन को प्रमुदित करते हुए बड़े होने लगे। वे समस्त राज-कुमारों में सर्वाधिक प्रतिभाशाली, ओजस्वी व अनुपम शक्ति सम्पन्न थे।

कृष्ण-जरासन्ध युद्ध के समय कुमार अरिष्टनेमि भी यदुसेना में उपस्थित थे। युद्ध के पश्चात् सभी यादवगण द्वारिकापुरी में आनन्दोपभोग करते हुए रहने लगे। माता-पिता, कृष्ण तथा सभी प्रमुख यादवों ने अरिष्टनेमि से विवाह करने का अनेक बार अनुरोध किया परन्तु वे बराबर उनके अनुरोध को टालते रहते थे। वे जन्मना विरक्त प्रकृति के थे। कृष्ण ने अपनी रानियों के सहयोग से उन्हें बड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठिनाई से विवाह के लिए तैयार किया। उग्रसेन की पुत्री राजीमती से अरिष्ट नेमि का विवाह सम्बन्ध निश्चित किया गया। विवाह के लिए जाते समय बारात के भोज के लिए एकत्रित अनेक पशु-पक्षियों को बाड़े में बन्द देखकर तथा यह जानकर कि बारात में आये लोगों के लिए इनका वध किया जायेगा, नेमिकुमार का जन्मना विरक्त भाव और अधिक दृढ़ हो गया। उन्होंने वहीं वैवाहिक वस्त्राभूषणों को त्याग कर वैराग्य का मार्ग अंगीकार करने का निश्चय कर लिया। मंगल महोत्सव में आयी इस बाधा ने वर तथा वधू—दोनों पक्षों के लोगों को विकल कर दिया। नेमिकुमार को हर सम्भव तरीके से समझाने का सभी ने प्रयत्न किया, परन्तु कुमार अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। वे वहाँ से तुरन्त लौट चले। उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा कठोर साधना के बाद कैवल्य प्राप्त किया। अपने द्वारा प्राप्त ज्ञान के आलोक से संसार को आलोकित करने के लिए अर्हत् अरिष्टनेमि विहार करने लगे। अनेक लोगों ने उनके पास दीक्षा ली। राजीमती ने भी उन्हीं के पथ का अनुकरण किया। उनका विहार द्वारिका में प्रायः होता रहता था। इस अवसर पर कृष्ण सदल-बल उनकी उपदेश सभाओं में उपस्थित रहा करते थे। कृष्ण की रानियों, पुत्रों, अन्य परिवारिक व्यक्तियों तथा द्वारिका के अनेक नर-नारियों ने इन अवसरों पर अर्हत् अरिष्टनेमि के प्रबोधन से वैराग्य का जीवन अंगीकार किया। अनेक वर्षों तक संसार के लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखानेवाले अर्हत् अरिष्टनेमि ने आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को मुक्ति प्राप्त की।

(२) गजसुकुमाल-चरित

भद्दिलपुर की सुलसा गाथापत्नी के, समान स्वरूपवाले छह पुत्र अर्हत् अरिष्टनेमि के पास दीक्षित हुए। अरिष्टनेमि के द्वारिका विहार के समय ये छह भाई दो-दो के संघ में तीन बार कृष्ण की माता देवकी के महल में भिक्षार्थ पहुँचे। इनको देखकर देवकी को अपने कृष्ण से पूर्व उत्पन्न छहों पुत्रों की बात याद हो आयी। वे भी आज ऐसे ही होते—इस विचार ने उसे दुखी कर दिया। बाद में यह बात जानकर कि ये वास्तव में उसी से उत्पन्न पुत्र हैं जिन्हें कि जन्म लेते ही सुलसा के पुत्रों से बदल दिया गया था, देवकी अत्यन्त करुणार्द्र हो गयी। वह चिन्ता-मग्न हो गयी कि सात पुत्रों की जननी होकर भी मैं एक का भी बालसुख न देख सकी। इस प्रकार के विचारों से वह उदास रहने लगी। कृष्ण ने माता के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए तप किया तथा हरिणैगमेषी देव से अपने लिए लघु भ्राता की याचना की। यथा समय देवकी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम गजसुकुमाल रखा गया।

गजसुकुमाल जब युवावस्था को प्राप्त हुए तो कृष्ण वासुदेव ने उनका विवाह सम्बन्ध द्वारिका के सोमिल नामक ब्राह्मण की रूपवती कन्या सोमा से निश्चित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर दिया। उन्हीं दिनों अर्हत् अरिष्टनेमि का द्वारिका आगमन हुआ। उनके उपदेश श्रवण कर गजसुकुमाल ने प्रव्रजित होने का निर्णय कर लिया। देवकी, कृष्ण तथा अन्य परिवार-जन ने उन्हें अनेक तरह समझाने का प्रयत्न किया परन्तु वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उन्होंने अर्हत् अरिष्टनेमि से दीक्षा ग्रहण की और उनकी आज्ञा लेकर महाकाल श्मशान में एक रात्रि के लिए ध्यानरूढ़ हो गये।

सन्ध्या वेला में यज्ञ की समिधा, कुश, पत्ते आदि लेकर लौटते हुए सोमिल की दृष्टि गजसुकुमाल पर पड़ी। उसे मुण्डित हुए देखकर वह क्रोधित हुआ। "इसने मेरी निर्दोष पुत्री के जीवन से खिलवाड़ की है, मैं भी इससे बदला लूँगा।" यह सोच कर उसने मुनिराज के मस्तक पर गीली मिट्टी की पाल बाँधकर पास की एक जलती चिता में से लाल-लाल जलते हुए अंगारे उनके मस्तक पर रख दिए। मुनि ने शान्त मन व निर्विकार भाव से उस भयंकर वेदना को सहन करते हुए सिद्धत्व प्राप्त किया।

(३) प्रद्युम्न-चरित

प्रद्युम्न कुमार कृष्ण की रानी रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र था। जन्म की छठी रात्रि में धूमकेतु नामक राक्षस ने वालक प्रद्युम्न का अपहरण किया और उसे एक शिला के नीचे दबा कर भाग गया। उसी समय कालसंवर नामक विद्याधर ने बालक प्रद्युम्न को उठा लिया। उसकी पत्नी कंचनमाला ने उसका पालन-पोषण किया। युवा होने पर प्रद्युम्न अतिशय रूपवान, बलशाली व प्रतिभावान बना। उसने कालसंवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। कालसंवर के अन्य पुत्र उससे जलने लगे व उसे मारने का उपाय करने लगे। परन्तु प्रद्युम्न ने सभी विपत्तियों का निर्भय होकर सामना किया तथा अनेक विद्याएँ सीख लीं। उसने कंचनमाला से भी तीन विद्याएँ ग्रहण कर लीं। कंचनमाला उसमें अनुरक्त हो गयी। परन्तु उसकी कामचेष्टाओं का प्रद्युम्न पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उलटा उसने उसे समझाने का प्रयत्न किया। इससे कुपित हो कंचनमाला ने कालसंवर को प्रद्युम्न के विरुद्ध उकसाया। कालसंवर और प्रद्युम्न के बीच भयंकर युद्ध हुआ। तभी नारद ने आकर बीच बचाव किया। वास्तविक तथ्य जानकर प्रद्युम्न द्वारिका लौटे।

द्वारिका आकर अपनी विमाता सत्यभामा व उसके पुत्र भानुकुमार को अपनी विद्याओं से परेशान किया। ब्रह्मचारी का वेश बनाकर अपनी माता रुक्मिणी के पास गये। मायामयी रुक्मिणी बनाकर उसे कृष्ण की सभा के आगे से खींचते हुए ले जाकर कृष्ण को ललकारा। कृष्ण और प्रद्युम्न में युद्ध हुआ। नारद ने आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। सभी बड़े प्रसन्न हुए। नगर में उत्सव मनाया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रद्युम्न ने लम्बी अवधि तक राजसुख भोगकर अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली तथा निर्वाण प्राप्त किया।

(४) पाण्डव-चरित

पाण्डु हस्तिनापुर के राजा थे। कृष्ण वासुदेव की बुआओं—कुन्ती तथा माद्री का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ था। राजा पाण्डु के पाँच पुत्र थे जो कि पाण्डव कहलाये। इनके नाम थे क्रमशः युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल व सहदेव।

एक समय कांपिल्यपुर नगर के राजा द्रुपद ने अपनी सुन्दर पुत्री द्रौपदी के लिए स्वयंवर का आयोजन किया। इस स्वयंवर के लिए जो निमन्त्रण भेजे गये थे उनमें सर्वप्रथम निमन्त्रण कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा गया। अन्य जिन राजाओं को निमन्त्रित किया गया उनमें प्रमुख थे—हस्तिनापुर के राजा पाण्डु, अंगदेश के अधिपति राजा कर्ण, नन्दिदेश के अधिपति शैल्यराज, शुक्तिमती नगरी में दमघोष के पुत्र राजा शिशुपाल, हस्तशीर्ष नगर के राजा दमवन्त, राजगृह में जरासन्ध के पुत्र राजा सहदेव, कौडिल्य नगर में भीष्मक के पुत्र राजा रुक्मि, मथुरा के राजा धर तथा विराट नगर के राजा कीचक। इन सभी राजाओं में कृष्ण वासुदेव प्रमुख थे।[१०]

स्वयंवर में द्रौपदी ने पाण्डु-पुत्रों का वरण किया। कालान्तर में एक बार नारद द्रौपदी के राजमहलों में गये। उस समय द्रौपदी ने नारद को कलहप्रिय जानते हुए उनके प्रति सम्मान प्रकट नहीं किया। इससे नारद ने अपने को अपमानित समझा। उन्होंने द्रौपदी के घमण्ड को चूर करने तथा उसका अप्रिय करने की योजना बनायी। एक बार वह अमरकंका नगरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ गये। वहाँ उन्होंने द्रौपदी के रूप सौन्दर्य का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन किया, और उस विलासी राजा को द्रौपदी का सुसुप्त अवस्था में राजमहलों से अपहरण करने को प्रेरित किया। नारद की सूचना के अनुसार पद्मनाभ ने द्रौपदी का सुसुप्त अवस्था में अपहरण करवा लिया। राजा पाण्डु अनेक प्रयत्नों के बाद भी उसका पता नहीं लगा सके। तब उन्होंने कुन्ती को कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा। कृष्ण वासुदेव ने भी द्रौपदी का पता लगवाने का बहुत प्रयत्न किया। अन्ततः नारद की ही सूचना के आधार पर उन्हें द्रौपदी की जानकारी मिली।

कृष्ण वासुदेव पाण्डवों के साथ अमरकंका गये। उन्होंने युद्ध में राजा पद्मनाभ को पराजित किया तथा द्रौपदी को लौटाकर लाये। मार्ग में गंगा को पार करते समय पाण्डुओं ने नौका को इसलिए छिपा दिया ताकि नदी पार करने में वे कृष्ण के पराक्रम व सामर्थ्य का परीक्षण कर सकें। पाण्डवों के इस कृत्य से कृष्ण कुपित हो गये। उन्होंने लौह-मुग्दर से उनके रथों को चूर्ण कर दिया तथा देश निर्वासन की आज्ञा दी। दुःखी पाण्डव हस्तिनापुर पहुँचे। यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाचार जानकर राजा पाण्डु ने कुन्ती को कृष्ण वासुदेव के पास द्वारिका भेजा। कृष्ण की आज्ञा से पाण्डवों ने दक्षिणी समुद्रतट पर पाण्डु मथुरा नाम की नगरी बसायी तथा शेष जीवन वहाँ निवास किया। द्वारिका-विनाश तथा कृष्ण की कालप्राप्ति के समाचार सुनकर पाण्डवों को संसार से विरक्ति हो गयी। उन्होंने नेमिनाथ के पास वैराग्य की दीक्षा ली और आजीव तप किया।

आगमों में पाण्डवों से सम्बन्धित इतना ही वृतान्त उपलब्ध है। परन्तु ई० सन् की १३ वीं १४वीं शती के पश्चात् कतिपय जैन लेखकों ने पाण्डवपुराण तथा पाण्डवचरित शीर्षक से ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थकारों ने महाभारत में उपलब्ध पाण्डवों की कथा तथा पाण्डवों से सम्बन्धित जैन परम्परागत प्रसंगों को मिलाकर पाण्डवचरित प्रस्तुत किया। इस प्रकार के ग्रन्थ हैं—पाण्डवपुराण (शुभचन्द-संस्कृत), पाण्डवपुराण (यशकीर्ति-अपभ्रंश), पंचपाण्डव चरित, रास-शालिभद्र, (आदिकालिक हिन्दी), पाण्डवपुराण (बुलाकीदास, हिन्दी) आदि।

(घ) जैन कृष्णकथा : निष्कर्ष

जैन कृष्णकथा के कतिपय निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं—

(१) वृष्णि वंशी यादव, जिनमें कृष्ण का जन्म हुआ, मूलतः सोरियपुर[11]—मथुरा के भू भाग (पश्चिमी उत्तर प्रदेश के आगरा-मथुरा जिलों का भूभाग) पर निवास करते थे। कृष्ण के पिता वसुदेव यादवों के अन्धकवृष्णि परिवार से थे तथा माता देवकी यादवों के भोजकवृष्णि परिवार की थीं। देवकी मथुरा के राजा कंस की चचेरी बहिन थीं।

(२) सोरियपुर में अन्धकवृष्णि परिवार के दसों भाई दशार्ह राजा की पदवी से विभूषित थे। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि दसों मिलकर शासन कार्य चलाते थे। अतः एक प्रकार का परिवारिक गणतन्त्र सोरियपुर में प्रचलित था। दूसरी ओर मथुरा के भोजकवृष्णियों में उग्रसेन के पुत्र कंस ने अपना निरकुंश शासन स्थापित कर लिया था जिसकी प्रेरणा सम्भवतः उसे अपने श्वसुर व राजगृह के निरंकुश अधिपति जरासन्ध से मिली होगी।

(३) कृष्ण द्वारा कंस के वध से जरासन्ध व वृष्णिवंशी यादवों में परस्पर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। जरासन्ध की शक्ति के सामने अपने को असमर्थ पाकर इन यादवों ने अपना परिवारिक भू-भाग छोड़कर पश्चिम की ओर पलायन किया और अन्त में समुद्र किनारे पहुँच कर द्वारिका में निवास किया।

(४) द्वारिका में रहते हुए कृष्ण के नेतृत्व में यादवों ने महान् शक्ति व वैभव अर्जित किया। जरासन्ध को जब यादवों तथा कृष्ण की जानकारी मिली तो उसने उन्हें अपना आधिपत्य स्वीकार करने अथवा युद्धभूमि में सामना करने का सन्देश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भेजा। अन्ततः कृष्ण के नेतृत्व में यादवों और जरासन्ध की सेना के बीच संघर्ष हुआ। कृष्ण ने जरासन्ध को मार डाला। यादव विजयी हुए तथा कृष्ण भारतभूमि के राजपुरुषों में अग्रणी रूप में प्रतिष्ठित हुए। जैन-कथा के अनुसार इस युद्ध के फलस्वरूप कृष्ण आधे भरतक्षेत्र के अधिपति अभिषिक्त हुए और उन्हें राजा वासुदेव के रूप में मान्यता मिली। वासुदेव के रूप में कृष्ण की वीरता व शक्ति-सम्पन्नता को जैन साहित्य में महत्ता मिली है। एक प्रकार से कृष्ण वासुदेव के वीरत्व की पूजा को जैन साहित्य ने मान्यता दी है तथा उन्हें अपने पौराणिक चरित नायकों में सम्मिलित किया है।

(५) कृष्ण वासुदेव का उत्तरकालीन जीवन अरिष्टनेमि के त्याग से प्रभावित रहा। अरिष्टनेमि उन्हीं के कुल के राजकुमार थे। महान् त्याग और तप के पश्चात् ज्ञान प्राप्त कर के वे अर्हत् प्रसिद्ध हुए। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक यदुवंशी स्त्री-पुरुषों एवं द्वारिका के अन्य निवासियों ने संन्यास धर्म अंगीकृत किया। स्वयं कृष्ण उनकी धर्म चर्चा में रुचिपूर्वक भाग लेते थे। इस प्रकार जैन कथानायक कृष्ण वासुदेव तीर्थंकर अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धावनत बताये गये हैं।

(६) जैन परम्परा के कृष्णचरित में कृष्ण के गोपीजनप्रिय एवं राधा-प्रिय के सन्दर्भों का सर्वथा अभाव है। राधा का नाम भी जैन परम्परागत कृष्ण-चरित वर्णन में कहीं देखने को नहीं मिलता। जैन कथानायक कृष्ण में शृंगारी नायक के स्वरूप का अभाव है। अपेक्षाकृत उनके वीर श्रेष्ठ शलाकापुरुष वासुदेव के स्वरूप का ही सर्वत्र वर्णन हुआ है।

(७) जैनागमों तथा प्राचीन जैन पुराण-ग्रन्थों में कृष्ण वासुदेव का पाण्डवों से कुपित होकर उन्हें दक्षिणी समुद्र तट पर पाण्डु मथुरा नगरी बसाने का तथा वहाँ निवास करने के आदेश का भी प्रसांगिक वर्णन है।[१२] कौरव-पाण्डव के मध्य हुए महाभारत युद्ध के सम्बन्ध में भी ये कृतियाँ मौन हैं। गीता के उपदेश के बारे में भी कोई जानकारी नहीं मिलती।

(८) जैन कथा में यादवों तथा द्वारिका का विनाश, जरा नामक शिकारी के वाण लगने से कृष्ण वासुदेव का परमधाम-गमन किंचित् हेर-फेर के साथ लगभग उसी रूप में वर्णित है जिस प्रकार कि महाभारत कथा तथा बौद्ध-घट जातक की कथा में वर्णित है।[१३]

तीनों परम्पराओं की कथा में कृष्ण के परमधाम गमन के प्रसंग के अतिरिक्त कृष्ण द्वारा कंस का वध, कृष्ण का अपर नाम वासुदेव होना तथा कृष्ण की अद्वितीय वीरता, पराक्रम व शक्तिसामर्थ्य का प्रसंग वर्णन लगभग एक समान है। तीनों कथाओं के ये समान तथ्य कृष्णचरित की ऐतिहासिकता के सन्धान की दृष्टि से ध्यान देने योग्य हैं। जैन कथा के समान बौद्ध कथा में भी महाभारत युद्ध के प्रसंग का तथा कृष्ण के गोपी-प्रेम और राधा-प्रेम के सन्दर्भों का अभाव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3803

कृष्ण का स्वरूप-वर्णन

जैन-साहित्य में कृष्ण-स्वरूप वर्णन : दो आयाम

जैन-साहित्य में कृष्ण-स्वरूप वर्णन के दो मुख्य आयाम हैं। प्रथम, महान वीर एवं शक्तिसम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष। द्वितीय, आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष। समस्त जैन साहित्य में परम्परागत रूप से कृष्ण-स्वरूप वर्णन इन्हीं दो परिधियों की सीमा में आबद्ध है। प्रथम पक्ष के उद्घाटन में जैन-साहित्यकार ने कृष्ण के बाल्यकाल के वीरतापूर्ण कृत्यों का, उनके द्वारा चाणूर, कंस तथा जरासन्ध आदि के वध का तथा द्वारिका के वैभव-वर्णन के साथ-साथ वहाँ के अधिपति श्रेष्ठ वासुदेव राजा के रूप में महिमामय स्वरूप का चित्रण किया है। दूसरे पक्ष का अर्थात् उनकी आध्यात्मिक भावना के प्रकटीकरण का एक मात्र आधार है—तीर्थंकर अरिष्टनेमि का द्वारिका आना, कृष्ण को उनका सान्निध्य प्राप्त होना तथा उनकी धर्मसभाओं (समवसरण) में उपस्थित होकर अपनी आध्यात्मिक पिपासा शान्त करना। कृष्णचरित सम्बन्धी जो जैन कृतियाँ विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध हैं, उनमें परम्परागतरूप से कृष्ण के स्वरूप वर्णन की ये दो सीमा-रेखाएँ हैं। इसका परिचय हम यहाँ विभिन्न कृतियों से उदाहरण देकर प्रस्तुत कर रहे हैं।

महान वीर व शक्ति-सम्पन्न वासुदेव शलाकापुरुष

(i) आगामिक एवं पौराणिक कृतियों में स्वरूप-वर्णन

कृष्ण अपने समय के वासुदेव शलाकापुरुष थे। इस रूप में वे महान शक्तिशाली अर्द्ध चक्रवर्ती राजा थे। उनका द्वारिका सहित सम्पूर्ण दक्षिण भरतक्षेत्र पर प्रभाव तथा प्रभुत्व था। द्वारिका की भव्यता, वैभव और उसके महान् महिमावान राजपुरुष कृष्ण का परिचय अन्तकृद्दशांग में इन शब्दों में दिया गया है—[1]

"तेणं कालेणं तेण समएणं वारवई णामं नयरी होतथा, दुवालस-जोयणाायामा णाव जोयण विच्छिण्णा धणवइमइ निम्मिया चाभी कर पा गारा नाना मणि-पंचवण्णक विसीसग परिमंडिया सुरम्मा अलकापुरिसंकासा पमुइय पक्कीलिया पच्चक्खं देवलोगभूया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीसेणं बारबईए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीमाए सत्थणं रेवया नाम पवए होत्था। तत्थं णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नाम उज्जाणे होत्था। तत्थणं बारबईए णयरीए कण्हे णामं वासुदेवे राया परिवसइ। महमा राय वण्ण ओ।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव पामोक्खाणं पंचण्ह महावीराणं पज्जुण्णपामोक्खाणं अद्धुढाणं कुमार कोडीणं, संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुदंत साहस्सीणं महसेण पामोक्खाणं छप्पणाए बलवग्ग साहस्सीणं वीरसेणं पामोक्खाणं एगवीसाए वीर साहस्सीणं उग्गसेणं पामोक्खाणं सोलसण्हं राय साहस्सीणं, रूप्पिणी पामोक्खाणं सोलसण्हं देविसाहस्सीणं अणंगसेणा पामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धमरहस्स य समत्तस्स आहेवच्चं जाव विहरइ।"

अर्थात् उन (तीर्थंकर अरिष्टनेमि) के समय में द्वारिका नाम की नगरी थी जो बारह योजन लम्बी तथा नौ योजन चौड़ी थी। इसका निर्माण स्वयं धनपति कुबेर ने अपने बुद्धिकौशल से किया था। यह स्वर्ण परकोटे तथा नाना प्रकार की मणियों से जड़ित कंगूरों से सुसज्जित थी। यह देवलोक स्वरूप थी तथा बड़ी ही मनभावन थी। यहाँ के भवनों की दीवारों पर अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों के चित्र अंकित थे। इस नगर के बाहर उत्तरी-पूर्वी दिशा में रैवतक नामक पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दनवन नामक उद्यान था। ऐसी इस श्रेष्ठ नगरी में महान मर्यादावान श्रीकृष्ण वासुदेव का राज्य था।

समुद्रविजय प्रमुख दस दशार्ह, बलदेव प्रमुख पाँच महावीर, प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमारगण, साम्ब प्रमुख साठ हज़ार शूरवीर, महासेन प्रमुख छप्पन हज़ार बलवीर, वीरसेन प्रमुख इक्कीस हज़ार वीर, उग्रसेन प्रमुख सोलह हज़ार अधीनस्थ नृपगण, रुक्मिणी (रुप्पिणी) प्रमुख सोलह हज़ार रानियाँ, अनंगसेन प्रमुख अनेक गणिकाएँ, ऐश्वर्यवान नागरिक, नगररक्षक सीमांत राजागण, मुखिया, सेठ, सार्थवाह आदि से युक्त उस द्वारिका नगरी सहित आधे भरतक्षेत्र में वे (कृष्ण वासुदेव) सम्पूर्ण राज्य करते थे।

द्वारिका नगरी के वैभव-वर्णन तथा यादवों की शक्ति के इस वर्णन द्वारा कृष्ण वासुदेव की शक्ति, महत्ता तथा समृद्धि का ही प्रकारान्तर से वर्णन है।

एक अन्य आगमिक कृति ज्ञातृधर्मकथा में द्रौपदी-स्वयंवर का वर्णन है। इस वर्णन में भारतभूमि के तत्कालीन राजपुरुषों का नामोल्लेख है। ये नृपति थे[2]—हस्तिनापुर के राजा पाण्डु (पाण्डवों के पिता), अंगदेश के अधिपति कर्ण, नन्दिदेश के अधिपति राजा शैल्य, शुक्तिमती नगरी के दमघोष के पुत्र राजा शिशुपाल, हस्तिशीर्ष नगर के राजा दमयन्त, मथुरा के राजा धर, राजगृह में जरासन्ध के पुत्र सहदेव, कौडिल्य नगर में भीष्मक के पुत्र रुक्मि तथा विराट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगर के कीचक। इन सभी राजाओं में वासुदेव कृष्ण को प्रमुख कहा गया है। यथा—

वासुदेव पामुक्खाणं बहुणं रायसहस्साणं आवसि करेह तेवि करेत्ता पच्चयिणांति।[3]

द्रौपदी-स्वयंवर का निमन्त्रण उक्त सभी राजाओं के पास भेजा गया था परन्तु इनमें भी प्रथम निमन्त्रण कृष्ण वासुदेव के पास भेजा गया। इसी प्रकार राजाओं के आगमन पर प्रथम स्वागत भी कृष्ण वासुदेव का ही किया गया। इस उल्लेख के आधार पर कृष्ण को भारतभूमि के सभी राजाओं में श्रेष्ठतम व प्रथम पूजनीय के रूप में वर्णित किया गया है।

विभिन्न आगमिक कृतियों में कृष्ण के वासुदेव राजा के इसी रूप का वर्णन हुआ है। जिनसेन कृत हरिवंशपुराण (संस्कृत) में कृष्ण के बाल्यकाल की पराक्रमपूर्ण क्रीड़ाओं का भी कवि ने वर्णन किया है। चाणूर तथा कंसवध का वर्णन करते हुए कवि ने कृष्ण की अद्वितीय वीरता तथा पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है—

हरिरपि हरिशक्तिः शक्तचाणूरकं तं, द्विगुणितमुरसि स्वे हारिहुंकारगर्भः।
व्यतनुत भुजयन्त्राक्रान्तनीरन्ध्रनिर्यद्बहलरुधिरधारोद्गारमुद्गीर्णजीवम्॥
दशशतहरिहस्तिप्रोद्बलौ साधिषूभाविति हठहतमल्लौ वीक्ष्य तौ शीरिकृष्णौ।
प्रचलितवति कंसे शातनिस्त्रिंकाहस्ते व्यचलदखिलरंगाम्बोधिरुत्तुंगनादः॥
अभिपतदरिहस्तात्खंगमाक्षिप्य केशेष्वतिहठमतिगृह्याहत्य भूमौ सरोषम्।
विहितपरुषपादाकर्षणस्तं शिलायां तदुचितमिति मत्वास्फाल्य हत्वा जहास॥[4]

अर्थात् सिंह के समान शक्ति के धारक एवं हुंकार से युक्त कृष्ण ने भी चाणूर मल्ल को, जो उनसे शरीर में दूना था अपने वक्षस्थल से लगाकर भुजयन्त्र के द्वारा इतने ज़ोर से दवाया कि उससे अत्यधिक रुधिर की धारा बहने लगी और वह निष्प्राण हो गया। कृष्ण और बलभद्र में एक हज़ार सिंह और हथियों का बल था। इस प्रकार अखाड़े में जब उन्होंने दृढ़पूर्वक कंस के दोनों प्रधान मल्लों को मार डाला तो उन्हें देख, कंस हाथ में पैनी तलवार लेकर उनकी ओर चला। उसके चलते ही समस्त अखाड़े का जनसमूह समुद्र की तरह जोरदार शब्द करता हुआ उठ खड़ा हुआ। कृष्ण ने सामने आते हुए शत्रु के हाथ से तलवार छीन ली और मजबूती से उसके बाल पकड़कर उसे क्रोधवश पृथ्वी पर पटक दिया। तदनन्तर उसके कठोर पैरों को खींचकर, उसके योग्य यही दण्ड है यह सोचकर, उसे पत्थर पर पछाड़कर मार डाला। कंस को मार कर कृष्ण हँसने लगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनसेन कृत हरिवंशपुराण में वर्णित कृष्णचरित के अनुसार कंसवध की घटना के पश्चात् कृष्ण तथा यादवगण, राजगृह के अधिपति तथा महान् शक्तिशाली राजा जरासन्ध के कोप-भाजन बन गये। कंस जरासन्ध का दामाद था। इस घटना के पश्चात् जरासन्ध के लगातार आक्रमणों से प्रताड़ित हो यादवगण ने मथुरा प्रदेश छोड़ कर सुदूर पश्चिम में द्वारिका में नये राज्य की स्थापना की। कृष्ण ने वहाँ यादवों के शक्तिशाली राज्य की स्थापना की तथा दक्षिण भारत में अपने प्रभुत्व व प्रभाव का विस्तार किया। कृष्ण की शक्ति व यादवों के माहात्म्य की बात जरासन्ध को ज्ञात हुई तो वह अत्यन्त कुपित हुआ। आचार्य जिनसेन के शब्दों में —

यादवानां च माहात्म्यं श्रुत्वा राजगृहाधिपः।
वणिजः तार्किकेभ्यश्च जातः कोपारुणेक्षणः॥[५]

अर्थात् वणिकों के माध्यम से जब राजगृह के अधिपति जरासन्ध को यादवों का माहात्म्य ज्ञात हुआ तो अत्यधिक कोप से उसके नेत्र लाल हो गये। उसने अपने मन्त्रियों से कहा—

उपेक्षिताः कुतो हेतोर्मन्त्रिणो भणतारयः।
वार्धौ प्रवृद्धसन्तानास्तरंगा इव भंगुराः॥
मन्त्रिणो हि प्रभोश्चक्षुर्निर्मलं चारचाक्षुषः।
ते कथं स्वामिनं स्वं च वञ्चयन्ति पुरःस्थिताः॥
यदि नाम महैश्वर्यप्रमत्तेन मया द्विषः।
नालक्ष्यन्त प्रतन्वाना युष्माभिस्तु कथं तु ते॥
नोच्छिद्येरन्महोद्योगैर्जातमात्रा यदि द्विषः।
दुःखयन्ति दुरान्तास्ते व्याधयः कुपिता इव॥
कंसं जामातरं हत्वा भ्रातरं चापराजितम्।
प्रविष्टाः शरणं दुष्टा यादवा यादसांपतिम्॥[६]

समुद्र में बढ़ती हुई तरंगों के समान भंगुर शत्रु आज तक उपेक्षित कैसे रहे आये? गुप्तचर रूपी नेत्रों से युक्त राजा के मन्त्री ही निर्मल चक्षु हैं फिर वे सामने खड़े रहकर स्वामी को तथा अपने-आपको धोखा क्यों देते रहे? यदि महान् ऐश्वर्य में मत्त रहनेवाले मैंने उन शत्रुओं को नहीं देखा तो वे आप लोगों से भी अदृष्ट कैसे रह गये? आप लोगों ने उन्हें क्यों नहीं देखा? यदि शत्रु उत्पन्न होते ही महान प्रयत्न पूर्वक नष्ट नहीं किये तो वे कोप को प्राप्त हुई बीमारियों के समान दुःख देते हैं। ये दुष्ट यादव मेरे जामाता कंस तथा भाई अपराजित को मारकर समुद्र की शरण में प्रविष्ट हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके पश्चात् जरासन्ध ने कृष्ण तथा यादवों को नष्ट करने के लिए अपनी सैनिक तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं तथा दूत भेजकर यादवों को आधिपत्य स्वीकार कर लेने का संदेश भेजा—

सापराधतया यूयं यद्यप्युद्भृतभीतयः।
दुर्गं श्रितास्तथाप्यस्मन्नभयं नमतैत्य माम्॥[७]

"अपराधी होने के कारण तुमने मुझ से भयभीत होकर दुर्ग का आश्रय लिया है तथापि तुम लोग मुझे आकर नमस्कार करो तो तुम्हें मुझसे भयभीत होने का कोई कारण नहीं है।"

इस प्रकार जैन स्रोतों में कृष्ण और जरासन्ध की प्रतिद्वन्द्विता एक-दूसरे को आधिपत्य में करने की है। जिस तरह जरासन्ध ने उक्त संदेश यादवों के पास भेजा लगभग ऐसी ही बात कृष्ण युद्धभूमि में जरासन्ध से कहते हैं। आचार्य जिनसेन के अनुसार—

इत्युक्तस्तं प्रति प्राह प्रकृत्या प्रश्रयी हरिः।
चक्रवर्त्यहमुद्भूतः शासने मम तिष्ठ भोः॥
अपकारे प्रवृत्तस्त्वमस्माकं यद्यपि स्फुटम्।
तथापि मृष्यतेऽस्माभिर्नतिमात्रप्रसादिभिः॥[८]

स्वभाव से विनम्र कृष्ण ने जरासन्ध से कहा—"मैं चक्रवर्ती उत्पन्न हो चुका हूँ इसलिए आज से मेरे शासन में रहिए। यद्यपि यह स्पस्ट है कि तुम हमारा अपकार करने में प्रवृत्त हो तथापि हम नमस्कार मात्र से प्रसन्न हो तुम्हारे अपकार क्षमा किये देते हैं।

समान शक्तिशाली व बलशाली इन दोनों शलाकापुरुषों का एक-दूसरे के आधिपत्य में रह सकना हो ही नहीं सकता था। फलतः युद्ध हुआ और जरासन्ध का कृष्ण के हाथों वध हुआ—

इत्युक्ते कुपितश्चक्री चक्रं प्रभ्राम्य सोऽमुचत्।
भूभृतस्तेन गत्वारं वक्षोभित्तिरभिद्यत॥[९]

चक्रवर्ती कृष्ण ने कुपित होकर अपना चक्र (एक अस्त्र) छोड़ा। उसने शीघ्र जाकर जरासन्ध के वक्षःस्थल रूपी भित्ति को भेद दिया।

जरासन्ध-वध के साथ ही कृष्ण को अर्ध-भरतक्षेत्र का स्वामी स्वीकार कर लिया गया—

अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टमम्बरे।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दनः॥[१०]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिषिक्तौ ततः सर्वैभूतैर्भूचरखेचरैः।
भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ ।।[11]

इस समस्त वर्णनक्रम में शलाकापुरुष वासुदेव कृष्ण की वीरता, तेजस्विता, अप्रतिम शक्ति-सम्पन्नता आदि का ही वर्णन है।

(ii) हिन्दी कृतियों में स्वरूप वर्णन

हिन्दी भाषा में लिखित जैन काव्य-कृतियों में भी कृष्ण का वीर, पराक्रमी तथा शक्तिशाली राजा के स्वरूप का विभिन्न प्रकार से वर्णन है—

कृष्ण का अद्वितीय पराक्रम बाल्यावस्था से ही प्रकट होने लगा था। इस पराक्रम को प्रकट करने के लिए हिन्दी कवियों ने कंस द्वारा पूर्व जन्म में सिद्ध की हुई देवियों को आज्ञा देकर, कृष्ण को खोजकर उन्हें मारने के प्रयत्नों का वर्णन किया है। इस वर्णन-क्रम में पूतना के पराक्रम तथा गोवर्धन धारण की घटना का जैन कवियों ने उल्लेख किया है। जैन कवि ने पूतना-वध नहीं दिखाया है। इसके स्थान पर पूतना का रोते-चिल्लाते हुए भाग जाने का मात्र वर्णन है। कवि नेमिचन्द्र के शब्दों में—

रूप कियो इक धाय को, विष आंचल दिया जाय।
आंचल खैच्या अति घणा, देवा पुकार भजि जाय ।।[12]

पूतना के इस प्रयत्न के बाद देवियों ने बालक कृष्ण को मारने के अन्य भी प्रयत्न किये पर वे सफल नहीं हो सकीं। अन्त में सबने मिलकर प्रलयंकारी वर्षा द्वारा कृष्ण सहित समस्त गोकुल को ही नष्ट कर देने का प्रयत्न किया। कृष्ण ने गोकुल की रक्षा करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत को ही इस भाँति उठा लिया जैसे कि वीर योद्धा शत्रु संहार हेतु अपना धनुष उठाता है—

देवा बन में जाय, मेघ तनी वरषा करी।
गोवर्द्धन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाव सों ।।[13]

कवि नेमिचन्द्र ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है—

केसो मन में चिन्तवे, परवत गोरधन लीयो उठाय।
चिटी आंगुली उपरे, तलिउ या सब गोपी गाय ।।[14]

कंस की देवियाँ जब बालक कृष्ण का अनिष्ट करने में सफल नहीं हो सकीं तथा वे दिनोंदिन कुशलतापूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने गये तो कंस चिन्तित रहने लगा। अन्ततः उसने मल्लयुद्ध के आयोजन के बहाने से कृष्ण को मथुरा बुलवाकर मार डालने की योजना बनायी। कृष्ण-बलराम के आगमन पर एक मदमस्त हाथी उन पर छोड़ दिया गया ताकि वह उन्हें रौंद डाले, परन्तु वीर बालक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्ण ने उस हाथी का दाँत तोड़ लिया और उसी से उसे मारकर भगा दिया। पुनः मल्लशाला में अपने से बहुत बड़े तथा भारी चाणूर मल्ल को मार डाला। अन्ततः क्रोधित हुए कंस को जब मारडालने की मुद्रा में अपनी ओर आते देखा तो अत्यधिक साहसपूर्वक अपने अद्वितीय पराक्रम के वल पर उसे भी देखते-देखते ही यमलोक पहुँचा दिया। वीर बालक कृष्ण के इस अद्वितीय शौर्य का जैन कवियों ने बड़े उत्साह से वर्णन किया है। कतिपय उदाहरण आगे दिये जा रहे हैं।

कवि खुशालचन्द ने अपने 'उत्तरपुराण' में हाथी छोड़ने से लेकर कंस-वध तक का वर्णन इस प्रकार किया है—

जाके सम्मुख दौड़्यो जाय। दंत उपारि लयो उमगाय।
ताही दंत थकी गज मारि। हस्ति भागि चली पुर मझारि॥
ताही जीति शोभित हरी भए। कंस आप मल्ल मृति लखि लए।
रुधिर प्रवाह थकी विपरीत। देख क्रोध धरि करि तजि नीति॥
आप मल्ल के आये सोय। तब हरि बेग अरि निज जोय।
चरन पकरि तब लये उठाय। पंखि सन उन ताहि फिराय॥

दोहा—

फेरि धरणि पटक्यो तणँ, कृष्ण कोप उपजाय।
मानो यमराजा तणी, सो ले भेंट चढ़ाय।[१५]

कृष्ण द्वारा चाणूरवध का वर्णन कवि शालिवाहन निम्न शब्दों में करते हैं—

चण्डूर मल्ल उठ्यो काल समान,
वज्रमुष्टि दैंयत समान॥
जानि कृष्ण दोनों कर गहे,
फेरि पाइ धरती पर बहे॥[१६]

कवि नेमिचन्द्र के शब्दों में—

कान्ह गयौ जब चौक में, चाण्डूर आयो तिहिं बार।
पकड़ि पछाड्यौ आवतौ, चाण्डूर पहुँच्यौ यम द्वार॥
कंस कोप करि उठ्यौ, पहुँच्यौ जादुराय पै।
एक पलक में मारियो, जम-घरि पहुंच्यौ जाय तै॥
जै जै कार सबद हुआ बाजा बाज्या सार।
कंस मारि धीस्यौ तबै पलक न लाई बार॥[१७]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा पराक्रम व साहस सामान्य व्यक्ति में होना सम्भव नहीं है। जो युवा साधारण गोप-जनों के वीच रहकर पला हो, फिर भी इतना असाधारण साहसी हो कि किसी राजा को उसी के घर में, उसके अनेक दरवारियों व प्रजाजन के समक्ष पटक कर मार डाले, विशिष्ट व्यक्तित्व सम्पन्न होना चाहिए। जैन साहित्य में वर्णित युवा कृष्ण का यह विशिष्ट व्यक्तित्व उनके भावी वासुदेवत्व स्वरूप का ही संकेत है। हिन्दी जैन साहित्य में वासुदेव का पर्यायवाची शब्द नारायण भी प्रयुक्त हुआ है। कवि सोमसुन्दर सन् १४२६ में लिखित अपनी रचना 'रंगसागर नेमि फागु' में कंस की मल्लशाला में प्रदर्शित युवक कृष्ण के इस पराक्रम का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि यह पराक्रम सामान्य व्यक्ति में नहीं हो सकता, यह वीर तो नारायण (वासुदेव) है, जिसने कंस का विध्वंस किया है। कवि के शब्दों में—

अवतारीआ इणि अवसररि मथुरां पुरिस रयण नव नेहरे,
सुख लालित लीला प्रीति अति वलदेव वासुदेव वेहुर।
वसुदेव रोहिणी देवकी नंदन चंदन अंजन वान रे
वृंदावनि यमुना जलि निरमलि रमति सांई गोई गान रे ॥
रमति करंता रंगि चडइ गोवर्द्धन शृंगि
गूजरि गोवालणिए गाई गोपी सिउ मिलीए ॥
कालीनाग जल अंतरालि कोमल कमलिनी नाल,
नाखिउ नारायणिए रमलि परायणीए।
कंस मल्ला खाडइ वीर पहुता साहस धीर,
वेहु बाइ वाकरीए बलवंता बांहि करीए,
बलभद्र वलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार,
कृष्णि वल पूरिउए चाण्डूर चुरिउ ए,
मौष्टिक चाणूर च्यूरिए देखीय अठिउ कंस,
नव बलवन्त नारायणि तास कीधउ ध्वंस।[१८]

वासुदेव कृष्ण का यह अद्वितीय पराक्रम तथा महान् वीरत्व उनके जीवन की बाद की अनेक घटनाओं में साकार होता गया है, यद्यपि उनके पूर्ण वासुदेव-रूप की प्रतिष्ठा जरासन्ध-वध के साथ हुई है। कंस-वध के पश्चात् नीतिकुशल कृष्ण सतत यादवों को लेकर पश्चिमी समुद्रतट की ओर प्रयाण करते हैं तथा वहाँ द्वारिका को राजधानी बनाकर नये राज्य की स्थापना करते हैं। तत्कालीन परिस्थितियों में मगध के शक्तिशाली नरेश जरासन्ध से निर्णायक युद्ध को टालने का यह बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय था। द्वारिका में रहकर कृष्ण के नेतृत्व में यादवगण शक्ति संचयन करते हैं तथा समस्त दक्षिण भारत पर अपने प्रभाव का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्तार करते हैं।

द्वारिका में राज्य-स्थापना तथा शक्ति-संचयन के पश्चात् कृष्णचरित की एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में रुक्मिणीहरण तथा इस अवसर पर हुए युद्ध में कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन हिन्दी जैन कृतियों में उत्साहपूर्वक हुआ है। इस घटना के वर्णन में कृष्ण के पराक्रम तथा वीर-स्वरूप का जैन साहित्यकारों ने जो वर्णन किया है, उसमें भी बार-बार वे यह उल्लेख करना नहीं भूले हैं कि कृष्ण नारायण (वासुदेव) हैं।

अपने 'प्रद्युम्न चरित' काव्य में कवि सधारू ने नारद के मुख से रुक्मिणी के समक्ष कृष्ण के जो गुण-वर्णन कराये हैं उसमें कृष्ण में विद्यमान उन लक्षणों का भी उल्लेख किया है जो वासुदेव (नारायण) शलाकापुरुष में होते हैं। नारद कहते हैं—

संखचक्र गजापहण जासु, अरु वलभद्र सहोदर तासु।
सात ताल जो वाण नि हणइ, सो नारायण नारद भणइ॥

आपी ताहि वज्र मुंदड़ी, सोहइ रतन पदारथ जड़ी।
कोमल हाथ करइ चकचुरु, सो नारायण गुण परिपुरु॥[19]

कृष्ण नारायण (वासुदेव) हैं क्योंकि शंख, चक्र, गदा आदि को धारण करने वाला तथा वलभद्र जिसके बड़े भ्राता हों, वह शलाकापुरुष वासुदेव का ही लक्षण है। पुनः वासुदेव कृष्ण का पराक्रम तथा शक्ति इससे प्रमाणित है कि वे एक वाण से सात ताल वृक्षों को एक साथ धराशायी कर सकते हैं, अपने कोमल हाथ से रत्नजड़ित वज्र मुद्रिका को दवाकर ही चूर-चूर कर सकते हैं।

पराक्रमी वासुदेव कृष्ण जब रुक्मिणि-हरण के पश्चात् अपना पाञ्चजन्य शंख फूंकते हैं तो सारी पृथ्वी थरथरा जाती है। सुमेरु पर्वत, कच्छप तथा शेषनाग भी काँप उठते हैं। कवि शालिवाहन इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

लई रुक्मणि रथ चढ़ाई
पंचाइण तब पूरीयो।
णि सुनि वयणु सब शैन कंप्यो,
महिमण्डल धर हर्यो॥
मेरु, कमठ तथा शेष कंप्यौ,
महलौ जाइ पुकारियो।
पुहुमि राहु अवधारीयो,
रुक्मणि हरि ले गयो॥[20]

इस घटना से कुपित रुक्मिणि के पिता भीष्मक तथा रुक्मिणि के लिए निश्चित वर शिशुपाल दोनों की सम्मिलित वाहिनी कृष्ण पर आक्रमण करती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इस भयंकर युद्ध में कृष्ण-बलराम का पराक्रम तथा कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन कवि इन शब्दों में करता है—

सेशपाल अरू भीखम राउ,
पैदल मिलै ण सूझै ढांड ।।
छोरणि बूंदत उछली खेह,
जाणो गरजो भादों नेह ।।
शारंगपाणि धनक ले हाथ,
शशिपालै पठउ जम साथ ।।
हाकि पचारि उठै दोऊ वीर,
बरसै बाण शयण घनणीर ।।[21]

'नेमीश्वर रास' के रचयिता नेमिचन्द्र कृष्ण द्वारा शिशुपाल-वध का वर्णन करते समय इस बात का भी उल्लेख करते हैं कि शिशुपाल पर यह जो बाण छोड़ रहा है, वह नारायण (वासुदेव) हैं—

इतनी कहि जब कोपियो,
नारायण जब छोड्यो बाण तों ।
सिर छेदो शिशुपाल को,
भांजि गया सब दल बल पाण तो ।
शिशुपाल मारयौ पैजस्यो,
रुक्मयो लियौ जु बांधि ।
परणी राणी रूक्मणि,
लगन महुरत साधि ।।[22]

इस सारे सन्दर्भ में कृष्ण का अद्भुत पराक्रम व तेज प्रकट हुआ है। और इसका वर्णन करते समय कविजन इस तथ्य से प्रभावित रहे हैं कि कृष्ण वासुदेव (नारायण) हैं। उनके वासुदेव होने का उल्लेख भी कर दिया गया है। जैन कृतियों में कृष्ण का यह वासुदेवत्व जरासन्ध-वध से ही पूर्ण हुआ है। जरासन्ध-वध से ही कृष्ण को वासुदेव रूप में मान्यता मिली और देवगण ने वासुदेव राजा कृष्ण की अर्चना की। जैन दिवाकर मुनि चौथमलजी ने अपने काव्यग्रन्थ 'भगवान् नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' में इस तथ्य को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

जरासन्ध औ श्रीकृष्ण ने भारी युद्ध मचाया।
शूरवीर भी दहल गए हैं, विद्याधर कंपाया ।।
× ×
फिर तो जरासन्ध ने झुंझला कर चक्ररत्न चलाया।
यादव सुभट देख उस ताईं, तुरत मुख कुम्हलाया ।।
× ×

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री कृष्ण ने उस चक्र को ग्रहण किया कर भाई।
सब के जी में जी आया, फिर सभी रहे हुलसाई।।
देवगण कहे भरत क्षेत्र में प्रगटे वासुदेव।
गंधोदक अरु पुष्पवर्षा कर कीनी देवन सेव ।।[२३]

कवि नेमिचन्द्र ने लिखा है—

क्षोभित किसन भयो तबे,
चक्र फेरि मेल्हयो तिहि बार तौ।
सिर छेदो मगधेश को,
जय जय सबद भयो तिहि लोक तो ।।[२४]

जरासन्ध वध के कारण तीनों लोकों में कृष्ण का जय-जयकार हुआ और उनका वासुदेव रूप में अभिनन्दन किया गया।

इस घटना का वर्णन करते हुए कवि शालिवाहन ने लिखा है—

तब मागध ता सन्मुख गयौ,
चक्र फिराई हाथ करि लयो।
तापर चक्र डारियो जामा,
तीनों लोक कंपीयो तामा ।।
हरि को नमस्कार करि जानि,
दाहिने हाथ चढ्यो सो आनि।
तब नारायण छांड्यो सोई,
मागध टूंक रतन-सिर होई ।।[२५]

बाल्यावस्था से ही जिनका अद्वितीय पराक्रम और तेजस्वी रूप प्रकट होने लगा था, और इसीलिए लोक में यह संभावना प्रकट होने लगी थी कि कृष्ण वासुदेव राजा होंगे, उसकी पूर्णता जरासन्ध-वध से सम्पन्न होती है। कंस शिशुपाल आदि का वध तथा द्वारिका में नये शक्तिशाली राज्य की स्थापना से कृष्ण भारत के नरेशों में अग्रणी हो गये थे, परन्तु प्रबल पराक्रमी व महान् शक्तिशाली मगधराज जरासन्ध के वध के पश्चात् तो उनकी टक्कर का कोई नरेश ही नहीं बचा। वे अद्वितीय और सर्वपूजित माने गये। उन्हें चक्रवर्ती राजा स्वीकार किया गया। यही कृष्ण का वासुदेव (नारायण) स्वरूप है। विभिन्न कवियों के शब्दों में—

दलबल साहण अनन्त,
करइ गर्ज मेदनी विलसंत ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन खण्ड चक्केसरी राउ,
अरिगण-दल भानइ मरिवाउ ।।[२६] —सधारु

तथा—

संख चक्क गय पहरण धारा,
कंस नरहिव करू संहारा ।
जिण चाणउरि मल्लु विदारिउ,
जरासन्ध बलवन्तउ धाडिउ ।।[२७] —देवेन्द्र सूरि

देवेन्द्रकीर्ति के शब्दों में—

तहां कृष्ण धारापति, भावी त्रिखण्ड नरेश ।
अमर भूप रसाधिपति, सब राजान विशेष ।।
राज्य वैभव भोगवि, यादव कुलां वर सूर ।
नागशैया जिमि दली, अरि कर्या चकचूर ।।[२८]

द्वारिका में राज्य करते हुए कृष्ण उसी प्रकार शोभित थे जैसे देवगण में इन्द्र । यथा—

नयरिहिं रज्जु करेई तहिं कहु नरिंदू ।
नरवई भति सणहो, जिव सुरगण इंदू ।।[२९]

ऐसे श्रेष्ठ राजा के राज्य में सब प्रकार से सुख और समृद्धि का प्रजाजन अनुभव करते हैं। अपने पाण्डव-यशोरसायन महाकाव्य में मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमल्ल जी ने इन भावों को प्रगट करते हुए एक सुन्दर सवैया लिखा है, जो इस प्रकार है—

सब देश विसे सुख संपति है अरू नेह बढ़े नित को सब में,
वित, वाहन, साजन धर्म धुरी कुल जाति दिपावत है तब में,
नहि झूंठ लबार जु लाघत जोवत में व्यसनी शुभ भावन में
मधुसूदन राज में सर्व सुखी इत-कित्त रुभीत लखी तब में ।।[३०]

कृष्ण की राजधानी द्वारिका भी विशिष्ट नगरी थी। विशिष्ट राजा की (वासुदेव की) विशिष्ट नगरी का वर्णन कवि समयसुन्दर ने इस प्रकार किया है—

नवयोजन नगरी विस्तारा, बारा योजन आयाम अपारा ।
वापीकर प्रकार मनोहर, शत्रु-कटक सू अगम अगोचर ।।
पंच रतन मणिमय को सीसा, राज-सिरि जाने आरीसा ।
रिद्धि समृद्धि करी सुख सारा, जाणे अलकापुरी अवतारा ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अति ऊंचा यादव आवासा, दण्ड कलश ध्वजपुण्य प्रकाशा।
नगरी बारावती कृष्ण नरेसा, राजा राज करहु सुविसेसा ॥[31]

कवि यशोधर ने लिखा है—

नगर द्वारिका देश मझार, जाणे इन्द्रपुरी अवतार।
बार जोयण ते फिर तुंवसि, ते देखी जनमन उलसि।
नव खण तेर खणा प्रासाद, हृह श्रेणी समलागुवाद।
कोटिधन तिहा रहीइ घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा ॥
याचक जननि देइ दान, न हीयउ हरष नहीं अभिमान।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुर्जणा ॥[32]

कवि जयशेखर सूरि ने भी अपने नेमिनाथ फागु में श्रेष्ठ नगरी द्वारिका और वहाँ के महान वीर जरासन्ध-हन्ता वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन किया है—

दीपई जिणि जिणमंदिर मंदर शिखर समान,
दीसई दिसिदिसि हाटक हाट कहुंक विमान ॥
धन दिहिं सइ हथि थापिय वापी अ वर आरामि।
मणि कण घण सूंपरिय पूरिय द्वारका नामि ॥
× × ×
वसुधा वीर वदीतउ जीतउ जिणी जरासिंधु।
र्तांह हरि अरिबल टालए राज सुबंधु ॥[33]

इस प्रकार प्राकृत आगमिक कृतियों और संस्कृत हरिवंशपुराण के अनुरूप ही हिन्दी के जैन कवियों ने भी द्वारिका के वासुदेव राजा (अर्द्ध चक्रवर्ती राजा) कृष्ण की वीरता, श्रेष्ठता, शक्ति-सामर्थ्य व सम्पन्नता का पुरजोर शब्दों में वर्णन किया है। द्वारिका नगर की भव्यता व सम्पन्नता तथा यादवगण और उनके यशस्वी राजपुरुष वासुदेव कृष्ण के पराक्रम व सामर्थ्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करके जैन साहित्यकारों ने कृष्ण की वीर-पूजा के ऐतिहासिक स्वरूप को ही वाणी दी है। जैन साहित्य के श्रीकृष्ण श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, अर्द्ध चक्रवर्ती राजा हैं तथा कंस और जरासन्ध के हन्ता हैं।

(च) आध्यात्मिक राजपुरुष

(i) आगमिक व पौराणिक कृतियों में स्वरूप वर्णन

जैन साहित्य में कृष्ण वासुदेव से युक्त राजपुरुष के रूप में चित्रित हैं उनकी धार्मिक निष्ठा तीर्थंकर अरिष्टनेमि के सन्दर्भ में वर्णित हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने चचेरे भाई अरिष्टनेमि को कृष्ण ने वैराग्य ग्रहण करने के अवसर पर बहुत समझाया परन्तु जब यह जान लिया कि अरिष्टनेमि अपने निश्चय पर अटल हैं, अडिग हैं तो उनके मनोरथ पूर्ण होने की भी कामना की—

वासुदेवो य णं भणइ लुत्त केसं जिइंदियं।
इच्छियं मणोरहं तुरियं पावसुत्त दमीसरा।।[३४]

अर्थात् लुंचित केशवाले तथा जितेन्द्रिय उन अरिष्टनेमि से वासुदेव ने कहा— 'हे संयम श्रेष्ठ ! तुम शीघ्र ही इच्छित मनोरथ प्राप्त करो।'

अपने तप के बल पर अरिष्टनेमि ने अपना मनोरथ प्राप्त किया। वे लोक अर्हत् रूप में प्रसिद्ध हुए। उनका धार्मिक नेतृत्व अनेक ने स्वीकार किया। जैन साहित्यिक कृतियों में प्राप्त वर्णनों के अनुसार अरिष्टनेमि द्वारिका के नागरिकों को उद्बोधन देने हेतु द्वारिका आते ही रहते थे। उनके द्वारिका प्रवास से सम्बन्धित अनेक प्रसंगों का आगमिक कृतियों में वर्णन हुआ है। इनमें कतिपय विस्तृत प्रसंग हैं—

गौतमकुमार चरित वर्णन,[३५]
गजसुकुमाल चरित,[३६]
यादवों तथा द्वारिका के भविष्य के सम्बन्ध में,
कृष्ण-अरिष्टनेमि के प्रश्नोत्तर,[३७]
थावच्चा-पुत्र की प्रव्रज्या,[३८]
निषधकुमार का प्रसंग आदि।

इन सभी प्रसंगों में अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन का, उनकी धर्मसभा में कृष्ण वासुदेव, उनके परिवार जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिकों के जाने का तथा प्रत्येक अवसर पर अरिष्टनेमि के उपदेश से प्रभावित होकर कृष्ण वासुदेव के किन्हीं परिवार-जन तथा द्वारिका के अन्य नागरिकों द्वारा अरिष्टनेमि के सान्निध्य में दीक्षा लेने का प्रासंगिक वर्णन है।

आठवें अंगग्रन्थ अन्तकृद्दशा (अंतगड्दसाओ) के ही प्रथम पाँच वर्ग अरिष्टनेमि के द्वारका आगमन से सम्बन्धित वर्णनों से युक्त हैं। इन वर्गों के अनेक अध्ययनों में स्वयं श्रीकृष्ण की रानियाँ, पुत्र-पौत्रादि, पुत्र-वधुएँ, सहोदर अनुज तथा अन्य अनेक पारिवारिक बन्धुओं के अरिष्टनेमि के सान्निध्य में दीक्षित होने का वर्णन हुआ है। इन दीक्षार्थियों में कृष्ण की प्रमुख रानियों—पद्मावती देवी, जाम्बवती देवी, सत्यभामा देवी, रुक्मिणी देवी, लक्ष्मणा देवी, सुसीमा देवी, गौरी देवी, तथा गान्धारी देवी,[४०] पुत्र-प्रपौत्र—प्रद्युम्न कुमार, शाम्ब कुमार, तथा अनिरुद्ध कुमार[४१], सहोदर अनुज गजसुकुमाल[४२] तथा अन्य बन्धु-बान्धवों, यथा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गौतम कुमार, समुद्र कुमार, सागर कुमार, गम्भीर कुमार, स्तिमित कुमार, अचल कुमार, काम्पिल्य कुमार, अक्षोभ कुमार, प्रसेनजित कुमार, विष्णु कुमार, अक्षोभ कुमार, धरण कुमार, अभिचन्द्र कुमार, सारण कुमार, सुमुख कुमार, द्विमुख कुमार, दारुक कुमार, अनाधृष्टि कुमार, जालि कुमार, मयालि कुमार, वारिषेण कुमार, सत्यनेमि कुमार, दृढनेमि कुमार तथा अन्य अनेक का अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने का उल्लेख है।[४३]

अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन से सम्बन्धित विविध आगमिक कृतियों में वर्णित प्रसंग जिस तथ्य की पुनरावृत्ति करते हैं वह है—

द्वारिका में अरिष्टनेमि आये, यह जानकर द्वारिकाधीश कृष्ण सदल-बल उनके वन्दन तथा धर्मकथाश्रवण को गये। इन प्रसंगों में इस तथ्य का वर्णन लगभग एक समान-सा ही है। उदाहरण के लिए अन्तकृद्दशांग सूत्र के ही दो स्थल उद्धृत हैं—

तते णं से कण्ह वासुदेवे बारवतीये नयरीये मज्झं-मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छिता जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तते णं अरहा अरिष्टनेमि कण्हस्य वासुदेवस्य गयसुकुमालस्य कुमारस्य तीसे य धम्मकहाए कण्ह पडिगते।[४४]

अर्थात्—तब कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य में से निकलकर सहस्राम्र नामक उद्यान में पहुँचे। तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, गजसुकुमाल कुमार तथा अन्य को धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर कृष्ण चले गये।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवती णयरी जह पढमे जाव कण्हे वासुदेवे आहेवचं जाव विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासेदेवस्य पउमावती नामं देवी होत्था। तेणं कालेणं, तेण समएणं अरहा अरिष्टनेमि समोसढे जाव विहरइ। कण्हे वासुदेवे णिग्गते जाव पज्जुवासइ, तते णं सा पउमावती देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणो हट्ठजहा देवती जाव पाज्जुवासइ। तएणं अरहा अरिट्ठनेमी कण्हस्य वसुदेवस्य पउमावतीए य धम्म कहा, परिसा पडिगया।[४५]

अर्थात्—उस काल, उस समय द्वारिका नगरी थी जहाँ (पहले वर्णन के अनुसार ही) कृष्ण वासुदेव राज्य कर रहे थे। कृष्ण वासुदेव की पद्मावती नाम की रानी थी। उस काल, उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी से निकले, यावत उनकी वन्दना की। अनन्तर वह पद्मावती देवी इस वृतान्त को सुनकर बहुत प्रसन्न हुई तथा (देवकी के समान ही) उनकी वन्दना को गयी। तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी आदि को धर्मोपदेश दिया। धर्मकथा सुनकर परिषद् (जनता) चली गयी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस धर्मकथा के अनन्तर कतिपय लोगों का अरिष्टनेमि के पास दीक्षित होने का वर्णन सभी प्रसंगों में समान रूप से हुआ है। इन प्रसंगों से एक ही बात ध्वनित होती है कि कृष्ण वासुदेव की अरिष्टनेमि के धर्मोपदेशों में रुचि थी। वे उनके उपदेश सुनते थे और यदा-कदा धर्म सम्बन्धी प्रश्न भी पूछ लेते थे। वासुदेव कृष्ण तथा अरिष्टनेमि के प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही द्वारिका नगरी के विनाश तथा यादव कुल नाश का भविष्य कथन के रूप में वर्णन हुआ है। इसी वर्णन में कृष्ण वासुदेव के देहत्याग तथा भावी जन्म का भी उल्लेख है। इस प्रकार आत्मा की नश्वरता तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त का कथन अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव के प्रति करते हैं। अन्तकृद्दशांग सूत्र में ही आया यह प्रसंग पर्याप्त विस्तार में है, जिसको मूल रूप में (अनुवाद सहित) यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"तते णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठनेमि वंदइ, णमंसति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इमी से ण भंते। बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव देवलोग भूयाए किं मूलाते विणासे भविस्सइ?

कण्हाइ। अरहा अरिट्ठनेमि कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा, इमीसे बारवतीए णयरीए नवजोयण जाव भूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

कण्हस्य वासुदेवस्य अरहतो अरिट्ठनेमिस्स अंतिए एवं सोच्चा निसम्म एवं अब्भत्थिए ४ समुप्पन्ने—

धन्ना णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पजुन्न-संब-अनिरुद्ध-दढनेमि-सच्चनेमिप्पमियओ कुमारा जेणं चइता हिरण्णं जाव परिमाएत्ता अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतियं मुंडा जाव पव्वइया अहण्णं अधन्ने, अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य मणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए ४, नो संचाएमि अरहतो अरिट्ठनेमिस्स जाव पवइत्तए।

कण्हाइ। अरहा अरिट्ठनेमि कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कण्हा! तव अयं अब्भत्थिए ४ समुपन्ने—धन्ना णं ते जाव पव्वइत्तए। से नूणं कण्हा! अयमट्ठे समट्ठे! हन्ताअत्थि। तं नो खलु कण्हा। तं एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जन्नं वासुदेवाचइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्सन्ति।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—न एयं भूयं वा जाव पव्वतिस्संति? कण्हाइ! अरहा अरिट्ठनेमि कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु कण्हा, सव्वे वियणं वासुदेवा पुव्वभवे निदाण कडा, से एतेणट्ठेणं कण्हा! एवं वुच्चति न एयं भूयं जाव पव्वइस्संति"।[46]

हिन्दी अनुवाद—इसके अनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वन्दना की। वन्दना एवं नमस्कार के पश्चात् इस प्रकार कहने लगे—"हे भंते ! इस नौ योजन विस्तृत एवं देवलोक समान द्वारिकानगरी का विनाश किस कारण से होगा ? अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"हे कृष्ण ! यह नौयोजन विस्तृत द्वारिका नगरी सुरा, अग्नि तथा द्वैपायन ऋषि के कारण से विनष्ट होगी।"

अर्हत् अरिष्टनेमि की यह बात सुनकर कृष्ण वासुदेव ने सोचा, विचार किया तथा उनके हृदय में यह संकल्प हुआ कि वे जालिकुमार, मयालि कुमार उपपालि कुमार, पुरुषषेण कुमार, वारिषेण कुमार, प्रद्युम्न कुमार, शाम्ब कुमार अनिरुद्ध कुमार, दृढ़नेमि कुमार, सत्यनेमि कुमार आदि धन्य हैं, जो सुवर्ण आदि अपने धन को छोड़कर उसे बाँट कर अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर प्रव्रजित हो गये। परन्तु मैं अकृतपुण्य हूँ जो राजवैभव तथा अन्तःपुर के मानवीय कामोपभोगों में लिप्त हो रहा हूँ और इतना समर्थ नहीं हूँ कि अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित हो सकूँ।

अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से पूछा—"हे कृष्ण आपके हृदय में यह आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुआ है कि वे धन्य हैं जो प्रव्रजित हो गये ? क्या यह ठीक है ? कृष्ण के यह कहने पर कि यह ठीक है, अरिष्टनेमि ने कहा—"हे कृष्ण, यह इस प्रकार से न कभी भूतकाल में हुआ है, न अब हो रहा है तथा न भविष्य में होगा कि जो वासुदेव (अर्द्धचक्रवर्ती राजा) सुवर्ण आदि को छोड़कर इस प्रकार प्रव्रजित हों।"

कृष्ण ने कहा—"हे भंते ! ऐसा किस कारण से आपने कहा?" अर्हत् अरिष्टनेमि ने वासुदेव कृष्ण से कहा—"हे कृष्ण ! सभी वासुदेव (श्रेष्ठ पुरुष) पूर्व भव में निदान किये हुए होते हैं (अर्थात वासुदेव अपने पूर्व जन्म में किसी अनुष्ठान विशेष से फल-प्राप्ति की अभिलाषा किये हुए होते हैं) इस कारण से हे कृष्ण ! ऐसा कहा जाता है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि वासुदेव प्रव्रजित हो सके हों।"

अरिष्टनेमि के इस कथन के माध्यम से एक विशाल राज्य के शक्तिशाली अधिपति का सब कुछ एकाएक त्यागकर विरक्त हो जाने की परवशता का वर्णन है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि कृष्ण वासुदेव की तीर्थंकर अरिष्टनेमि के धार्मिक सिद्धान्तों में अभिरुचि तो थी परन्तु वे उनके वैराग्य मार्ग के पथिक नहीं हो सके थे।

वासुदेव कृष्ण का अरिष्टनेमि की धर्मसभाओं में उपस्थित होने तथा धर्मोपदेश सुनने का ऐसा ही वर्णन विभिन्न भाषाओं में रचित जैन काव्य कृतियों में हुआ है। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही परम्परा के साहित्य में इस तथ्य कथन का लगभग एक-सी ही शब्दावली में वर्णन है। उदाहरण के लिए, दिगम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम्परा के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ जिनसेनाचार्य कृत हरिवंशपुराण के निम्न श्लोक भी द्रष्टव्य हैं—

वसुदेवो बलः कृष्णः सान्तःपुरसुहृज्जनः ।
द्वारिकाप्रजया युक्तः प्रद्युम्नादिसुतान्वितः ।।
विभूत्या परयागत्य शैवेयमभिवन्द्यते ।
आसीनाः समवस्थाने धर्मं शुश्रूषुरीश्वरात् ।।[४७]

अर्थात् अन्तःपुर की रानियों, मित्रजन द्वारिका की प्रजा तथा प्रद्युम्न आदि पुत्रों से सहित वसुदेव, बलदेव तथा कृष्ण बड़ी विभूति के साथ आये तथा वन्दना कर समवसरण में यथास्थान बैठ कर भगवान् से धर्म श्रवण करने लगे।

प्राकृत तथा संस्कृत ग्रन्थों की लगभग ऐसी शब्दावली का ही आधुनिक भारतीय भाषाओं की कृतियों में भी उपयोग हुआ है। आगे हिन्दी काव्य-कृतियों के उदाहरण से यह मान्यता स्पष्ट हो जाती है।

(ii) हिन्दी कृतियों में वर्णन

हिन्दी जैन कवियों ने नेमिनाथ चरित को आधार बना कर बहुत-सी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं। इन सभी कृतियों में प्रारम्भ में द्वारिका के शक्तिशाली व महान् विभूति से सम्पन्न राजा कृष्ण वासुदेव का उल्लेख हुआ है तथा अन्तिम भाग में अर्हत् अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन के प्रसंग वर्णन में कृष्ण वासुदेव का सदल बल उनकी धर्मसभा में जाने तथा उपदेश श्रवण का वर्णन है। इसी प्रकार का वर्णन प्रद्युम्न कुमार तथा गजसुकुमार के चरित से सम्बन्धित काव्य कृतियों में हुआ है। हिन्दी जैन कवियों ने संस्कृत 'हरिवंशपुराण' के अनुकरण पर हरिवंश पुराण ग्रन्थों की रचना की है। इन कृतियों में जरासन्ध-वध के फलस्वरूप कृष्ण का वासुदेव राजा के रूप में प्रतिष्ठित होने, तत्पश्चात् सुखोपभोग करते हुए प्रायः द्वारिका में ही निवास करने का वर्णन है। जरासन्ध-वध के पश्चात् की की कालावधि में ही द्वारिका में अरिष्टनेमि कुमार की विरक्ति तथा अर्हत् रूप में प्रसिद्धि पा जाने की घटनाएँ घटित हुईं। इस के बाद का द्वारिका का वातावरण अर्हत् अरिष्टनेमि से प्रभावित रहा है। अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन तथा उनके उपदेश श्रवण से कतिपय लोगों का वैराग्य द्वारा दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन ही इन कृतियों में प्रमुखता से हुआ है।

अरिष्टनेमि के आगमन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण अधिक विस्तार में न होकर उल्लेख रूप में है। जब भी अरिष्टनेमि द्वारिका आते कृष्ण, वासुदेव बलराम तथा द्वारिका के अन्य यादवगण उनके उपदेश श्रवण को जाते थे।

आदिकालीन हिन्दी काव्य कृति 'प्रद्युम्न चरित' (१३५४ ई०) के रचयिता कवि सधारु ने नेमिनाथ के आगमन पर यादवों तथा कृष्ण का उनकी उपदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभा (समवसरण) में उपस्थित होने का वर्णन इस प्रकार किया है—

छप्पन कोटि जादव मन रलैं,
नारायण स्यो हलधर चले।
समउसरण परमेसरु जहाँ,
हलधर कान्ह पहुँचे वहाँ ॥[४८]

इन सभाओं में उपस्थित होकर कृष्ण धर्मोपदेश सुनते तथा अपनी शंकाओं का समाधान भी प्राप्त करते। कवि नेमिचन्द्र के शब्दों में—

नमस्कार फिरि-फिरि किया
प्रश्न किया तब केशोराय।
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को,
धर्म-अधर्म कह्यो जिनराय ॥[४९]

अरिष्टनेमि के उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक द्वारिकावासी उनके पास वैराग्य की दीक्षा ले लेते थे। अरिष्टनेमि के इन प्रवासों का द्वारिका के जन-जीवन पर वड़ा प्रभाव पड़ा। जैन कवि के अनुसार, स्वयं कृष्ण वासुदेव की रानियों तथा पुत्रादि ने अरिष्टनेमि से प्रभावित होकर संन्यासमार्ग की दीक्षा ग्रहण कर ली थी। यथा—

पटराणी केसो तणी,
रुक्मणि नै दै आदि।
दीज्या ली जिनराज की
तपस्या करे सुसादि ॥

तथा—

प्रद्युम्न संबुकुमार, अनिरुद्धो
प्रद्युम्न सुत धीर तौ।
तीनों जाय दीक्षा ग्रही
जादव और सबै वर वीर तौ ॥[५०]

विभिन्न हिन्दी कृतियों में लगभग इसी शब्दावली में अरिष्टनेमि के द्वारिका आगमन, उनकी उपदेश-सभा में कृष्ण, वलराम तथा उनके परिवार-जन सहित अनेक द्वारकावासियों का उपस्थित होना और उपदेशों से प्रभावित होकर उनमें से कुछ का वैराग्य की दीक्षा ले लेने का वर्णन है। इसी कथन की पुनरावृत्ति सभी कृतियों में प्रसंगानुसार हुई है। इससे अधिक वर्णन अथवा प्रसंग का विवरण इन कृतियों में नहीं हुआ है। अतः समान-सी शब्दावली में उपलब्ध इन उल्लेखों की पुनरावृत्ति को अनावश्यक समझकर हम यह प्रकरण यहीं समाप्त कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृष्ण का बाल-गोपाल रूप

जैन साहित्य में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश

आचार्य जिनसेन कृत संस्कृत हरिवंशपुराण (८वीं शताब्दी ई०) में कृष्ण वासुदेव के परम्परागत स्वरूप-वर्णन के साथ-साथ उनकी बाल्यावस्था के वर्णन क्रम में उनके बाल-गोपाल रूप का वर्णन ध्यान देने योग्य है। इस पुराण के अनुकरण पर कालान्तर में अपभ्रंश तथा हिन्दी जैन कृतियों में भी कृष्ण वासुदेव के बाल-गोपाल रूप का वर्णन मिलता है। इस वर्णन के दो रूप हैं—

(i) नटखट व चपल ग्वाल-बालक : नटखट व चपल ग्वाल बालक के रूप में कृष्ण के दूध-दही खाने फैलाने तथा विविध बालसुलभ क्रीड़ाएँ करने का वर्णन है।

(ii) कृष्ण का गोपाल वेश : गोपाल वेश में पीताम्बर पहनने, मयूर-पिच्छ का मुकुट धारण करने, आभूषण पहनने तथा पुष्पों की माला धारण करने का वर्णन है।

कृष्ण का यह बाल-गोपाल रूप बाल्यकाल में उनके गोकुल-प्रवास की कथा के सन्दर्भ में वर्णित है। जैनागमों में कृष्ण के गोकुल प्रवास की घटना का वर्णन नहीं है। अतः हरिवंशपुराण में इस घटना का वर्णन तथा इसके कारण कृष्ण के बाल-गोपाल रूप का समावेश जैनेतर परम्परा के प्रभाव स्वरूप है।

कृष्ण के बाल-गोपाल रूप के स्रोत

डॉ० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर का मत है कि कृष्ण की गोकुल-कथा तथा 'महाभारत' में वर्णित उनके उत्तरकालीन जीवन की कथा का कोई मेल नहीं है। साथ ही, महाभारत के किसी अंश से कृष्ण के इस प्रकार के बाल्यकाल की कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। सभापर्व के अध्याय ३१ में शिशुपाल ने कृष्ण की निन्दा करते हुए उनके गोकुल में किये गये पूतना वध आदि कर्मों का जो उल्लेख किया है, उसे डॉ० भण्डारकर प्रक्षिप्त अंश मानते हैं। इस प्रकार उन्होंने महाभारत काल तक कृष्ण की गोकुल-कथा को अपरिचित माना है। साथ ही उन्होंने हरिवंश, वायु एवं भागवत आदि पुराणों में गोकुल के दैत्यों एवं कंस के नाश के लिए कृष्ण के अवतार लेने के वर्णन को इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि इन ग्रन्थों के प्रणयन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समय तक कृष्ण की गोकुल-कथा प्रचलित हो गयी होगी।[1]

इस दृष्टि से जिनसेन कृत हरिवंशपुराण, वैष्णव हरिवंशपुराण से प्रभावित रचना है। कृष्णजन्म की परिस्थितियाँ, वसुदेवजी द्वारा सद्यःजात कृष्ण को गोकुल ले जाना तथा नन्द गोप के संरक्षण में छोड़ना, बदले में यशोदा की पुत्री को लाना, कृष्ण का गोकुल में लालन-पालन तथा बचपन व्यतीत करना, कंस द्वारा कृष्ण को मारने के प्रयत्न और अन्त में मल्लक्रीड़ा के आयोजन के अवसर पर कृष्ण-बलराम द्वारा कंस के मल्ल चाणूर व मुष्टिक के साथ ही कंस का वध करना आदि घटना क्रम पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो दोनों में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। किन्तु पाँचवीं शताब्दी में संकलित जैनागमों की कृष्ण-कथा में कृष्ण का गोकुल प्रवास तथा कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन नहीं है, अतः हमारे यह मानने का बहुत बड़ा आधार है कि जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के ये प्रसंग वैष्णव पुराणों, मुख्यतः हरिवंशपुराण के प्रभाव स्वरूप, इस पुराण में ग्राह्य हुए हैं। इस प्रभाव का भी एक कारण है। चूँकि परम्परागत जैनागमिक कथा में कृष्ण के माता-पिता का नाम देवकी वसुदेव उपलब्ध होता है। कृष्ण द्वारा कंस के वध का भी वर्णन है, परन्तु कृष्ण के बाल्यकाल का वर्णन तथा उक्त कथा-प्रसंगों को जोड़नेवाली किसी कथावस्तु का अभाव है। स्वभावतः अपने हरिवंशपुराण ग्रन्थ में कृष्ण-कथा को पूर्ण एवं व्यवस्थित रूप देते समय आचार्य जिनसेन वैष्णव हरिवंशपुराण की कृष्णकथा से प्रभावित हुए। उन्होंने वैष्णव कथा के इन प्रसंगों को अपने मन्तव्यानुसार परिवर्तित करके अपना लिया। ग्वालों के मध्य पलनेवाले कृष्ण का गोपाल वेश व चपल बालक के रूप में उनके दूध-दही खाने-फैलाने के वर्णन उन्हें ग्राह्य हो सके। वैष्णव-पुराणों में गोपाल-कृष्ण की भावना का पूर्णरूप से विकास हरिवंशपुराण में द्रष्टव्य है। हरिवंशपुराण के लगभग २० अध्यायों में गोपाल कृष्ण से सम्बन्धित प्रसंग वर्णित हैं। इन प्रसंगों में पूतनावध शकटवध, दाम बन्ध, यमलार्जुन भंग, धेनुक वध, गोवर्द्धन धारण, वृषभासुर वध, केशी वध आदि का वर्णन है।

डॉ० भण्डारकर ने महाभारतेतर वैष्णवपुराणों में गोकुल के कृष्ण की कथा का समावेश आभीर जाति के कारण माना है। यह जाति गोपालक थी। आज भी अहीरों में गोपालन तथा कृषि मुख्य व्यवसाय हैं। भण्डारकर ने प्रमाण देकर यह बताया है कि इस जाति के लोग मथुरा के समीपवर्ती मधुवन से लेकर द्वारिका के आस-पास तक विस्तृत क्षेत्र में बसे थे तथा ई० सन् की दूसरी-तीसरी शताब्दी में ये उच्च राजनैतिक स्थिति प्राप्त कर चुके थे। आभीर राजाओं—इश्वसेन व क्षत्रप रुद्रसिंह से सम्बन्धित अभिलेख क्रमशः नासिक तथा गुण्डा काठियावाड़ प्रदेश) में प्राप्त हुए हैं। डॉ० भण्डारकर का विचार है कि संभवतः आभीर जाति के लोग अपने साथ बालक (कृष्ण) की पूजा, उनके असाधारण जन्म,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पिता का यह ज्ञान कि वह उनके पुत्र नहीं हैं, एवं अबोध शिशुओं की हत्या की कथाएँ अपने साथ लाये थे। नन्द को यह ज्ञात था कि वे कृष्ण के पिता नहीं हैं तथा कंस शिशुओं का वध कर देता है। जंगली गर्दभ के रूप में धेनुकासुर के वध जैसी कृष्ण के वाल्यकाल की कथाएँ आभीर अपने साथ लाये तथा अन्य कथाएँ उनके भारत में आने के बाद विकसित हुई।[2]

कृष्णचरित वर्णन की दृष्टि से वैष्णव-पुराणों में श्रीमद्भागवत का महत्व पूर्ण स्थान है। इस पुराण में कृष्णलीला का सर्वाधिक व्यवस्थित वर्णन है। इसमें प्रथम वार कृष्ण की वाल, किशोर और यौवन लीलाओं का व्यापक वर्णन है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन दशम स्कन्ध में हुआ है। बालक कृष्ण की गोकुल लीला में(पाँच वर्ष की वय तक लीलाओं में) पूतना-वध (अध्याय छः), शकट-भंग (अध्याय सात), नामकरण, मृतिका-भंजन, मुख में विश्वरूप दर्शन (अध्याय आठ), उखल बन्धन(अध्याय नवम), तथा यमलार्जुन उद्धार (अध्याय दशम) आदि की लीलाएँ प्रमुख हैं।

वृन्दावन लीला (वय ८ वर्ष तक) में वत्सासुर-वध, बकासुर-वध, अघासुर वध, ब्रह्मा द्वारा गो-वत्स हरण, ब्रह्मा-मोह-भंग, गो-वत्स प्रत्यावर्तन, धेनुकासुर-वध, कालियादमन, दावानल-पान तथा प्रलम्बासुर-वध आदि का वर्णन है। यह अध्याय ११ से १८ तक हुआ है।

किशोर लीला में शरद-वर्णन, वेणु गीत, चीरहरण तथा गोवर्द्धन धारण की लीलाएँ अध्याय २०-२५ में वर्णित हैं। तदनन्तर अध्याय २९-३६ में कृष्ण की यौवन-लीला का वर्णन है। पाँच अध्यायों में वर्णन होने के कारण इसे रास पंचाध्यायी भी कहते हैं। गोपी-कृष्ण लीला का सुमधुर रूप इसी रास-लीला में वर्णित है। इनमें वेणुनाद आकर्षण, रासारम्भ, कृष्ण का अन्तर्धान होना, गोपियों का कृष्ण-लीला अनुकरण, गोपी गीत, कृष्ण का आश्वासन एवं महारास का वर्णन है। महारास वर्णन में कृष्ण की वंशी प्रेरित, सजी- धजी गोपियों का प्रियतम कृष्ण के पास आना, कृष्ण द्वारा उनके समस्त काम-स्थलों का स्पर्श कर उन्हें पूर्णत: उद्दीप्त कर देना और पूर्ण-आनन्द के उस क्षण में कृष्ण का अपनी एक प्रियतम गोपी को साथ लेकर रास से अन्तर्धान हो जाने आदि का वर्णन है।

जैन-साहित्य में कृष्ण वासुदेव के जिस वाल-गोपाल रूप का वर्णन हुआ है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि भागवतपुराण की उक्त कृष्ण-लीला वर्णन का जैन साहित्य पर प्रभाव नहीं है। अपेक्षाकृत वैष्णव हरिवंशपुराण ही एक मात्र ग्रन्थ है जिस का जैन परम्परागत कृष्ण स्वरूप वर्णन पर प्रभाव पड़ा है।

जैन पौराणिक कृतियों में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप

गोपालक नन्द के यहाँ पलते समय बालक कृष्ण का ग्वाल बालक का वेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धारण करना तथा दूध-दही का खाना फैलाना सामान्य है। अतः कृष्ण के गोपाल बालक रूप का वर्णन करते समय आचार्य जिनसेन इन तत्त्वों का ही अपने हरिवंशपुराण ग्रन्थ में वर्णन करते हैं। यह वर्णन भी अति संक्षिप्त और उल्लेख रूप में ही है।

(i) नटखट व चपल गोप बालक

बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं का आचार्य जिनसेन ने इस प्रकार से वर्णन किया है—

स्वपन्निषीदन्नुरसा प्रसर्पन् पदं ददन्नस्खलितं प्रधावन्।
कलाभिलापो नवनीतमद्यन्नजीगमज्जिष्णुरहर्दिनानि ॥[3]

बालक कृष्ण कभी सोता था, कभी बैठता था, कभी छाती के बल सरकता था, कभी लड़खड़ाते पैर उठाते हुए चलता था, कभी दौड़ा-दौड़ा फिरता था, कभी मधुर आलाप करता था, कभी मक्खन खाता हुआ दिन-रात व्यतीत करता था। इसी एक मात्र श्लोक में कवि ने कृष्ण की शिशु-क्रीड़ा का वर्णन कर दिया है।

आचार्य गुणभद्र ने अपने महापुराण (उत्तर पुराण) में कृष्ण की बाललीला का इतना भी उल्लेख नहीं किया है। अपभ्रंश के महाकवि पुष्पदन्त ने भी अपने ग्रन्थ 'तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु' (महापुराण) में कृष्ण की बाल-लीलाओं का संक्षिप्त वर्णन ही किया है। कवि ने धूल घूसरित कृष्ण का ग्वाल-बालकों के साथ खेलने, दही खाने-फैलाने तथा अन्य बाल-सुलभ कौतुकों का वर्णन इस प्रकार किया है—

धूलीधूसरेण वरमुक्कसरेण तिणा मुरारिणा।
कीला रसवसेण गोवालय गोवी हिययहारिणा ॥[4]

अण्णहिं पुणुदिणि तहिणियपंगणि।
जणमणहारी रमइ मुरारी।
घोट्टइ खीरं लोट्टइ णीरं।
भंजइ कुंभं पेलयइ डिंभं।
छंडइ महिणं चक्खइ दहियं ॥[5]

कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का यह संक्षिप्त विवरण भी बृहत्काय पौराणिक काव्य-कृतियों में ही उपलब्ध है। वह भी विशेषतः हरिवंशपुराण (आचार्य जिनसेन) तथा इसके अनुकरण पर रचित रचनाओं में ही द्रष्टव्य है। छोटी काव्य कृतियों में तो इसका उल्लेख तक भी नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ii) बालक कृष्ण का गोपाल वष

यही स्थिति कृष्ण के गोपाल-वेश वर्णन की है। हरिवंशपुराण में आचार्य जिनसेन कृष्ण के गोपालवेश का वर्णन इस शब्दों में करते हैं—

सुपीतवासो युगलं वसानं वनेवतंसीकृतबर्हिवर्हम्।[६]
अखण्डनीलोत्पलमुण्डमालं सुकण्ठिकाभूषितकम्बुकण्ठम ॥
सुवर्णकर्णाभरणोज्ज्वलाभं लुबंधुजीवालिकमुच्चमौलिम्।
हिरण्यरोचिर्वलयप्रकोष्ठं सुपादगोपालकसानुवंशम् ॥
यशोदयानीय यशोदयाढ्यं प्रणामितं पुत्रमसौ सवित्री।
सुगोपवेषं निकटे निषण्णं परामृशन्ती चिरमालुलोके ॥

अर्थात् जो पीले रंग के दो वस्त्र पहने था, वन के मध्य में मयूर-पिच्छ की कलंगी लगाये हुए था, अखण्ड नील कमल की माला जिसके गले में पड़ी हुई थी, जिसका शंख के समान सुन्दर कण्ठ उत्तम कण्ठी से विभूषित था, सुवर्ण के कर्णाभरणों से जिसकी आभा अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, जिसके ललाट पर दुपहरिया के फूल लटक रहे थे, सिर पर ऊँचा मुकुट बँधा था, कलाइयों में स्वर्ण के कड़े सुशोभित थे, जिसके साथ अनेक सुन्दर बालक थे एवं जो यश और दया से सुशोभित था, ऐसे पुत्र को लाकर यशोदा ने देवकी के चरणों में प्रणाम कराया। उत्तम गोप के वेष को धारण करनेवाला वह पुत्र प्रणाम कर पास ही में बैठ गया।

श्री कृष्ण का यह गोपाल-वेश वर्णन उल्लेख जैसा ही है। जैन कवि इसके भी विस्तार में नहीं गया है।

हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का बालगोपाल रूप

जिनसेन कृत हरिवंशपुराण के अनुकरण पर कृष्ण के बालगोपाल रूप वर्णन की प्रवृत्ति हिन्दी जैन साहित्य में भी रही है। हिन्दी जैन कवियों ने भी गोप-बालक कृष्ण की दूध-दही खाने-फैलाने की बाल क्रीड़ाओं का तथा गोप-बालक कृष्ण के गोप-वेश का सामान्य-सा वर्णन करके कथाक्रम को आगे बढ़ा दिया है। बाल गोपाल कृष्ण का संक्षिप्त वर्णन कृष्ण वासुदेव के सम्पूर्ण जीवन-चरित को वर्णन करनेवाली कतिपय कृतियों में ही उपलब्ध है।

(i) नटखट व चपल गोप-बालक

अपने हरिवंश-पुराण ग्रन्थ में कवि शालिवाहन ने गोप-बालक कृष्ण की बालक्रीड़ा का वर्णन करते हुए लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपुन खाई ग्वाल घर देई,
घर को क्षार विराणी लेई।
घर-घर वासण फोडे जाई,
दूध-दही सब लेहि छिडाई ॥[७]

गौ-पालकों की वस्ती है। गोपालक नन्द का नटखट व चपल वालक कृष्ण न केवल अपने घर का दूध दही खाता-फैलाता है, अपितु अवसर मिल जाता है तो ग्वाल-साथी के घर में भी उसके साथ मिलकर उसके घर का दूध-दही खाने फैलाने में भी पीछे नहीं रहता है। अपने घर में स्वयं खाकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, अपने साथी ग्वाल-वालक को भी ले जाकर देता है। नटखट और चपल होने के साथ ही वालक कृष्ण बड़ा निर्भीक स्वभाव का है। माता यशोदा जव उसे मक्खन खाते फैलाते देखती है, तो डाँटती है तथा डराने का प्रयत्न करती है। परन्तु वालक कृष्ण डरता नहीं है। कवि नेमिचन्द लिखते हैं—

माखण खायरू फैलाय,
मात जसोदा बांधे आणि तौ।
डरपायौ डरपै नहीं,
माता तणीय न मानै काणि तौ ॥[८]

चपल वालक कृष्ण का लगभग इन्हीं शब्दों में विभिन्न हिन्दी जैन कवियों ने वर्णन किया है। 'पाण्डव यशोरसायन' काव्य के रचयिता मुनि मिश्रीमल्ल के गोप वालक कृष्ण के इस नटखट रूप का वर्णन द्रष्टव्य है—

दहीड़ो डाले दूध में, मांखण जल मांही रे।
जल राले कभी छाछ में, भूं राख भराई रे ॥
कौतुक दूध का कर रह्या, खेले अपने दावे रे।
अधर बजावे बंसुरी, सब ही हंस जावे रे ॥
पुरस्योरे खावै नहीं, माया नजर चुरावै रे।
छाने कोठा में घुसी, माखन गटकावे रे ॥[९]

दही दूध में डालना, मक्खन को पानी में डाल देना, छाछ में जल मिला देना, राख देखकर मुँह में राख भर लेना, अपनी मन-मस्ती में खेलना, कभी बाँसुरी बजाना, माता यशोदा खाना खिलाने का प्रयत्न करे तो खाना न खाना और उसकी आँख बचाकर भाग जाना, कोठे में अर्थात् नीचे के घर में घुसकर, छिपकर मक्खन खाना आदि कृष्ण की वाल-सुलभ क्रीड़ाओं का जैन कवि ने वर्णन किया है। जैन कवि के लिए वालक कृष्ण एक नटखट गोप बालक से अधिक कुछ नहीं हैं। अत: उसने उसके बालक रूप का सहज-सामान्य ही वर्णन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालक कृष्ण का गोपाल वेष

गौ पालकों के बीच रहनेवाले गौ-पालक नन्द के पुत्र कृष्ण की वेश-भूषा भी ग्वाल-वालकों जैसी ही है। इस वेश भूषा में (गोपाल-वेश में) हिन्दी जैन कवि ने उसके पीले रंग के वस्त्र धारण करने, कानों में कुण्डल पहनने, सिर पर मोर-पंखों का मुकुट धारण करने तथा बाँसुरी बजाने का वर्णन किया है—

यथा—

कानाकुण्डल जगमगँ
तन सौहे पीताम्बर चीर।
मुकुट विराजे अति भलो,
वंशी बजावैं श्याम-शरीर ॥[10]

ऐसा गोपाल वेश धारण करनेवाला, श्यामल सुन्दर कृष्ण गोपियों के सहज आकर्षक का केन्द्र है। उसका चपल बाल स्वभाव, उसका मनोहारी गोपाल वेश और साथ में उसकी सुन्दर मुखाकृति, घुंघराले केश, अरुणाभ नयन तथा नन्हें नन्हें पैरों से उसका ठुमक-ठुमक कर चलना, यह सब नन्द के गोकुल की ग्वालनियों के लिए जादुई आकर्षण है।

कामदेव के समान सुरूपवान वह बाल गोपाल उनका मन हर लेता है। हिन्दी जैन कवि गोपाल वेशधारी बालक कृष्ण के इस प्रभाव का गोपी के शब्दों में इस प्रकार वर्णन करता है—

मुकुट धर मोरनो, मुझ मन हर लीनो रे।
कामणगारो कान्हडो, मो पै जादू कीनो रे॥
ठुम ठुम चाल सुहावनी, अणियाली आंखडल्या रे।
घुघरवाला केश है, जुल्फै बाकडल्या रे॥[11]

इस प्रकार नन्द गोप के पुत्र कृष्ण की बाल्यावस्था का यह वर्णन आठवीं शताब्दी ई० के लगभग से जैन-साहित्यिक कृतियों में ग्राह्य हुआ और संस्कृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी की जैन कृतियों में स्थान पाता रहा है परन्तु यह समस्त तथ्य कथन जैसा है। इस कथन में भी बालक कृष्ण की चपलता तथा गोपाल वेश धारण करने की बात ही कही गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्दर्भ-तालिका

कृष्ण-चरित वर्णन : पृष्ठभूमि

१. जैन परम्परा में काल को अनादि-अनन्त चक्र माना गया है। यह चक्र सुख से दुःख की ओर और दुःख से सुख की ओर अनवरत घूमता रहता है। सुख से दुःख की ओर गतिमान कालखण्ड अवसर्पिणी तथा दुःख से सुख की ओर गतिमान कालखण्ड उत्सर्पिणी कहलाता है।

२. जैन कृतियों में त्रेषठ शलाकापुरुषों के नाम हैं—

चौबीस तीर्थंकर—ऋषभनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, अरिष्टनेमि (नेमिनाथ), पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी।

बारह चक्रवर्ती—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त।

नौ बलभद्र—विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नान्दी, नन्दिमित्र, राम और बलराम।

नौ वासुदेव—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, नृसिंह, पुण्डरीक, दत्तक, लक्ष्मण और कृष्ण।

नौ प्रतिवासुदेव—अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासन्ध।

३. गंगासिंधुणई हि वेयड्ढगेण भरहखेत्तम्मि। छक्खण्डं संजादं ताण विभागं परूवेमो। उत्तरदक्खिण भरहे खंडाणि तिण्णि होंति पतेवक्कं। दक्खिण तिय खंडेसु अजाखण्डोत्ति मज्झिओ।—तिलोयपण्णत्ति ४/२६६-२६७

४. यह प्रसंग महाभारत के 'खिल पर्व' कहे जानेवाले हरिवंश-पुराण में भी आया है। युद्ध-भूमि में पौण्ड्रक कृष्ण से कहता है—

स नतः पौण्ड्रको राजा वासुदेवमुवाच हि।
भो भो यादव गोपाल इदानीं क्व गतो भवान्॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वां द्रष्टुमयं संप्राप्तो वासुदेवोऽस्मि साम्प्रतम् ।
हत्वा त्वां सबलं कृष्ण बलैर्बहुभिरन्वितः ॥
अहमेको भविष्यामि वासुदेवो महीतले ।
यच्चक्रं तव गोविन्द प्रथितं सुप्रभं महत् ॥

५. कृष्ण को कैद करने की दुर्योधन की योजना की जानकारी मिलने पर विदुर का उद्‌बोधन—

सौमद्वारे दानवेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम् ॥४१॥
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतुं नाशकच्चैनं तं प्रार्थयसे बलात् ॥४२॥
प्राग्जोतिषगतं शौरिर्नरकः सह दानवैः ।
ग्रहीतुं नाशकत् तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४३॥
अनेक-युगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृधे ।
नीत्वा कन्या-सहस्राणि उपयेमे यथाविधि ॥४४॥
निर्मोचने षट् सहस्राः पाशैर्बद्धाः महासुराः ।
ग्रहीतुं नाशकंश्चैनं तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥४५॥
अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा ।
गोवर्धनो धारितश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥४६॥
अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः ।
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन् ॥४७॥
जरासन्धरथ वक्रश्च शिशुपालश्च वीर्यवान् ।
वाणश्च निहतः संख्ये राजानश्च निषूदिताः ॥४८॥
वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा ।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥४९॥
एकार्णवे च स्वपता निहतौ मधुकैटभौ ।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥५०॥
अये कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे ।
यद् यदिच्छेद्यं शौरिस्तत् तत्कुर्यादयत्नतः ॥५१॥
तं न बुद्धयसि गोविन्दं घोरविक्रममच्युतम् ।
आशीविषमिव क्रुद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥५२॥
प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ।
पतंगोऽग्निमिवासाद्य सामात्यो न भविष्यति ॥५३॥

—महाभारत : उद्योगपर्व १३०/४१-५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जंससी छायंसी कंता सोभा सुभगा
पियदंसणा सुरुआ सुहसीलसुहाभिगमसव्वजणणयणकंता
ओहवला अतिबला महावला अनिहिता अपराइया
सत्तुमद्दणा रिपुसहस्समाणमद्दणा साणुकोसा अमच्छरा
अचवला अचण्डा पिय मज्जुलपलावहसिया गंभीर
मधुरपडिपुण्णसच्चवयणा अव्युवगय वच्छला सरण्णा लक्खण
वंजण गुणोववेया माणुम्माणपमाण पडिपुण्ण सुजाय सव्वगं
सुंदरंगासिस सोभागारकंत जियदंसणा······महाधणु
विकट्ठया महासत्तसायरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा
जुद्धकित्तिपुरिसा विपुलकुलसंमुभवा महारणविहाडगा
अद्धभरहसामी राजकुलवंसतिलया अजिया अजियरहा
······पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसहा
मरुपवसमकप्पा अब्भहियरायतेय लच्छीए दिप्पमाणा

—समवायांगसूत्र २०७

७. (क) ज्ञातृधर्म कथा : श्रुतस्कन्ध २, अध्ययन ५, (थावच्चा-पुत्र का प्रसंग)
(ख) अन्तकृद्दशा : प्रथम वर्ग : प्रथम अध्ययन (गौतमकुमार का प्रसंग) और वर्ग ३ अध्ययन ८ (गजसुकुमार का आख्यान)

८. अथ य तपोदानमार्जवमहिंसासत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ।

छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।४

९. तद्धैतद् घोर आंगिरस : कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एवं स बभूव सोऽन्ते वेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसंशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः । —छान्दोग्य उपनिषद ३।१७।६

(सानुवाद शांकरभाष्य सहित, गीता प्रेस)

१०. भगवद्गीता : परिचयात्मक निबन्ध, पृ० ३२ ।
हिन्दी अनुवाद—प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।

कृष्ण-चरित सम्बधी कृतियाँ

१. श्वेताम्बर मान्यतानुसार पाँच श्रुतकेवली हैं—प्रभवस्वामी, शय्यंभव, यशोभद्र, सम्भूतविजय और भद्रबाहु ।
दिगम्बर मान्यतानुसार—आर्य विष्णु (नन्दि), नन्दिमित्र, अपराजित, आचार्य गोवर्धन और भद्रबाहु ।

२. जैन धर्म : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, पृ० ४०५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. जैन धर्म : लेखक—कैलाश चन्द्र शास्त्री, पृ० २४६-२५०
४. आगम-साहित्य के संकलन के प्रयत्न हुए—
प्रथम—महावीर-निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई० सन्-पूर्व ३६७ में) स्थूल-भद्राचार्य की अध्यक्षता में, पाटलीपुत्र में। द्वितीय—ई० सन् ३२७-३४० के मध्य, मथुरा में, स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में एवं तृतीय—ई० सन् ४५३-४६६ के मध्य, वल्लभी में, आचार्य देवर्द्धिगणि की अध्यक्षता में। इस समय यही संकलन उपलब्ध माना जाता है।
५. आगम-साहित्य का पर्यालोचन (मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल') मुनिश्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, पृ० ८१२
६. जनागम-धर और प्राकृत वाङ्मय (मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ, लेखक—मुनिश्री पुण्यविजय), पृ० ७२०
७. समयायांग सूत्र : सूत्र १८९
८. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, भाग-४, पृ० ६
९. समवायांग सूत्र (टीका : मुनिश्री घासीलालजी, प्रकाशक—अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।
१०. ज्ञाताधर्म कथा, टीका : मुनिश्री घासीलालजी, प्रकाशक—अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।
११. अंतकृद्दशा, टीका : मुनि श्री घासीलालजी, अ० भा० श्वे० स्था० जन शास्त्रोद्धार समिति राजकोट।
१२. प्रश्न-व्याकरण, प्रकाशक : अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।
१३. निरयावलिका : प्रकाशक : अ० भा० श्वे० स्था० जैन शास्त्रोद्धार समिति, राजकोट।
१४. उत्तराध्ययन, वही
१५. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० ३८१।
१६. शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरां
पातीन्द्रायुधनाम्नि कृष्णनृपजे श्रीवल्लभे दक्षिणाम्।
पूर्वां श्री मदवन्तिभूभृतिनृपे वत्सादिराजेऽपरां
सूर्याणामधिमण्डलं जययुते वीरे वराहेऽवति ॥ ६६/५२)
१७. कल्याणैः परिवर्धमानविपुलश्रीवर्धमाने पुरे।
श्रीपार्श्वालयनन्नराजवसतौ पर्याप्तशेषः पुरा।
पश्चाद्दोस्तटिकाप्रजाप्रजनितप्राज्यार्चनावर्चने।
शान्तेः शान्तगृहे जिनस्य रचितो वंशो हरीणामयम् ११६०/५३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८. हरिवंशपुराण : सम्पादकीय, पृ० ३

१९. लोकसंस्थानमत्रादौ राजवंशोद्भवस्ततः।
हरिवंशावतारोऽतो वसुदेवविचेष्टितम्॥
चरितं नेमिनाथस्य द्वारवत्या निवेशनम्।
युद्धवर्णननिर्वाणे पुराणेऽष्टौ शुभा इमे॥
—हरिवंशपुराण, प्रथम सर्ग, श्लोक ७१-७२

२०. जैन साहित्य और इतिहास, नाथूराम प्रेमी, पृ० १३७

२१. वही, पृ० १४०

२२. उत्तरपुराण—गुणभद्राचार्य, प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

२३. उत्तरपुराण (प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ काशी) प्रस्तावना, पृ० ६

२४. जैन साहित्य और इतिहास : श्री नाथूराम प्रेमी, पृ० ४१२

२५. जैन साहित्य का वृहत् इतिहास (भाग ४) : डा० गुलाबचन्द चौधरी, पृ० ७२-७६

२६. वही, पृ० ७६

२७. जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी : पृ० २११

२८. वही, पृ० १९७ व १९९

२९. तेरह जाइव कंडे कुरु कंडे कूणवीस संधीओ।
तह सट्ठि जुज्झय कंडे एवं वाणउदि संधीओ॥
छव्वरिसाइं तिमासा एयारस वासरा सयंभुस्स।
वाणवइ-संधि करणे बीलीणो इत्तिओ कालो॥
—रिट्ठणेमि चरिउ : ९२ वीं संधि

३०. जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृ० २०३

३१. प्रभाचन्द्र और श्रीचन्द्र मुनि के टिप्पण ग्रन्थ उपलब्ध हैं—
जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी, पृ० २३६

३२. पी० एल० वैद्य द्वारा सम्पादित एवं माणिक चन्द्र जैन ग्रन्थमाला से तीन खण्डों में मूल प्रकाशित। भारतीय ज्ञानपीठ से हिन्दी अनुवाद सहित छह भागों में प्रकाशित हो रहा है।

३३. जैन साहित्य और इतिहास। नाथूराम प्रेमी, पृ० २५०

३४. वही, पृ० २२५

३५. वही, पृ० २२९

३६. धणु तणुसमु मज्झु ण तं गहणु, णेहु णिकारिमु इच्छमि।
देवीसुअ सुदणिहि तेण इउं, णिलए तुहारए अच्छमि॥२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मज्झु कइत्तणु जिणपय भत्ति, पसरइ णउ णिपजीवियवित्ति।

—उत्तरपुराण

३७. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन—डा० राजाराम जैन, पृ० १८०-२०७

३८. हिन्दी रास काव्य (डा० हरीश), प्रकाशक—मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० ८०

३९. प्रद्युम्न चरित : प्रस्तावना, पृ० २६

४०. प्रद्युम्नचरित, छन्द ५३९-४१

४१. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० ८५

४२. एक प्रति श्री पल्लीवाल दिगम्बर जैन मन्दिर धूलियागंज आगरा में उपलब्ध है जिसकी प्रतिलिपि संवत् १८०८ की है। दूसरी प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में है जिसकी प्रतिलिपि संवत् १७५९ की है।

४३. उत्तरपुराण (दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर, हस्तलिखित प्रति), पृ० ३०८, छन्द ९१-१०७।

४४. एक सहस अरु आठ सत बरष असीती और।
या ही संवत् मो करी पूरण इह गुण गौर॥

जैन साहित्य में कृष्ण-कथा

१. सोरियपुरम्मि नयरे, आसिराया महद्दिए।
वसुदेवेत्ति नामेणं, राय लक्खणं संजुए॥
तस्स भज्जा दुवे आसि रोहिणी देवई तहा।
तासि दोण्हं पि दो पुत्रा, इहा य राम-केसवा॥

—उत्तराध्ययन २२/२, ६

२. समुविजयोऽक्षोभ्यः स्तिमितः सागरस्तथा।
हिमवानचलश्चैव धरणः पूरणस्तथा॥
अभिचन्द्रश्च नवमो, वसुदेवश्च वीर्यवान्।
वसुदेवानुजे कन्ये, कुन्ती माद्री च विश्रुते॥

—अन्तकृद्दशा १/१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. चाणूरचूरगरिट्ठ वसभघाइणो, नागदप्पमहणाज मल्लज्जुणं भंजगा।
महासउणि पूयण रिपु कंसमउगोऽगा जरासन्ध माण महणा॥
—प्रश्नव्याकरण, आस्रवद्वार : अधर्मद्वार ४-६

४. तत्थणं बारबईए णयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया होत्था जाव पसासे माणे विहरइ। अण्णेसिं च बहूणं राईसर जाव सत्थवाहप्पमिईणं वेयड्ढगिरि सागरमेरागस्स दाहिणड्ढ भरहस्स आहे वच्चं जाव विहरइ।
—निरयावलिका ५/५/१

५. अंतकृद्दशांग सूत्र ३/८

६. अत्रान्तरे सुरैस्तुष्टैस्तस्मिन्नुद्घुष्टमम्बरे।
नवमो वासुदेवोऽभूद्वसुदेवस्य नन्दनः।
निहतश्च जरासन्धस्तच्चक्रेणैव संयुगे।
प्रतिशत्रुर्गुणद्वेषी वासुदेवेन चक्रिणा॥
—हरिवंशपुराण (जिनसेन), सर्ग ५३, श्लोक १७-१८

७. अभिषिक्तौ ततः सर्वैर्भूपैर्भूचरखैचरैः।
भरतार्धविभुत्वे तौ प्रसिद्धौ रामकेशवौ॥
—हरिवंशपुराण सर्ग, ५३। श्लोक ४३

८. उद्दिश्य पाण्डवान् यान्तौ मथुरां दक्षिणामुभौ।
—हरिवंशपुराण जिनसेन ६२/४

९. अन्तकृद्दशा ३/८ के अनुसार यह तथ्य देवकी को अर्हत् अरिष्टनेमि से ज्ञात हुआ।

१०. वासुदेवपामुक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवसि करहे तेवि करेत्ता पच्चमिणांति। —ज्ञाताधर्म-कथा, अध्ययन १६ सूत्र २०

११. सोरियपुर वर्तमान उत्तर प्रदेश के शिकोहाबाद नगर से लगभग तेरह मील दूर बटेश्वर के पास स्थित था।

१२. पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेलाअलं तत्थ पंडुमुदुरं णिवेसंतु मम अदिट्ठ सेवगा भवंतु। —ज्ञाताधर्मकथा १६/३२

१३. महाभारत तथा बौद्ध घटजातक की कृष्णकथा परिशिष्ट में दी गई है।

कृष्ण का स्वरूप-वर्णन

१. अन्तकृतदशांग सूत्र : प्रथम वर्ग : सूत्र ४-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. ज्ञाताधर्म कथा : अध्ययन, १६ सूत्र १६

३. वही, सूत्र २०

४. हरिवंशपुराण (जिनसेन) : सर्ग ३६, श्लोक ४५-४५

५. वही, सर्ग ५०, श्लोक ४

६. वही, सर्ग ५०, श्लोक १०-१४

७. वही, सर्ग ५०, श्लोक ४३

८. वही, सर्ग ५२ श्लोक ७८-७६

९. वही, सर्ग ५२ श्लोक ८३

१०. वही, सर्ग ५३/१७

११. वही, सर्ग ५३/४३

१२. नेमिचन्द्र : नेमीश्वररास, छन्द सं० १२०, हस्तलिखित प्रति, उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१३. खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण १४-१५ प्रति उपलब्ध दिगम्वर जैन मन्दिर लूणकरण जी पाण्डया, जयपुर।

१४. नेमीश्वर रास, छन्द १८४, प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१५. खुशालचन्द : उत्तरपुराण, पन्ना १६६-२००, हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्र, भण्डार जयपुर।

१६. शालिवाहन : हरिवंशपुराण, पन्ना ४५, हस्तलिखित प्रति, दिगम्बर जैन पल्लीवाल मन्दिर धूलियागंज, आगरा।

१७. नेमिचन्द्र : नेमीश्वर रास छन्द १७०-१७२, १७३। हस्तलिखित प्रति, आमेर शास्त्रभण्डार, जयपुर।

१८. सोमसुन्दर : रंगसागर नेमि फागु : प्रथम खण्ड ३२-३६ (हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियां : सम्पादक डा० गोविन्द रजनीश, प्रकाशक—मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० १३६-१४८

१९. सधारू : प्रद्युम्नचरित (प्रकाशक—अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी प्र० का० समिति, जयपुर), छन्द ५१-५२।

२०. शालिवाहन : हरिवंशपुराण (अप्रकाशित, हस्तलिखित—आगरा प्रति, ५२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१. वही, ५२/१९५८ तथा १९६३

२२. नेमिचन्द्र : नेमीश्वर रास (आमेर शास्त्र भण्डार की प्रति)

२३. चौथमल : भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, पद सं० २४३-४५, ४८-४९।

२४. नेमिचन्द्र : नेमीश्वर रास, छन्द ८९९

२५. शालिवाहन : हरिवंशपुराण—१८/२२

२६. प्रद्युम्नचरित १/२१

२७. देवेन्द्र सूरि : गयसुकुमाल रास, छन्द ६

२८. देवेन्द्र सूरि : प्रद्युम्न प्रबन्ध, २३-२४

२९. देवेन्द्र सूरि : गजसुकुमाल रास, छन्द ५

३०. पाण्डव यशोरसायन, पृ० २८५

३१. समय सुन्दर : शाम्ब-प्रद्युम्न रास (हस्तलिखित प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर), ६-११

३२. यशोधर-बलिभद्र चौपई, ११-१३

३३. जयशेखर सूरि : नेमिनाथ फागु २-३

३४. उत्तराध्ययन-सूत्र २२-२५

३५. अंतकृद्दशांग सूत्र : प्रथम संवर्ग, प्रथम अध्ययन

३६. वही, तृतीय वर्ग : अष्टम अध्ययन

३७. वही

३८. ज्ञाताधर्मकथा, श्रुतस्कन्ध २, अध्ययन ५

३९. निरयावलिका, वर्ग ५, अध्ययन १

४०. अन्तकृद्दशांग सूत्र : पंचम वर्ग, अध्ययन १-८

४१. वही, वर्ग ४, अध्ययन ६-८

४२. वही, वर्ग ३, अध्ययन ८

४३. वही, वर्ग १-४ के विभिन्न अध्ययन

४४. अंतकृद्दशांग-सूत्र, वर्ग ३, अध्ययन २

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४५. अन्तकृद्दशांग सूत्र, वर्ग ५, प्रथम अध्ययन

४६. अन्तकृद्दशांग सूत्र, वर्ग ५, प्रथम अध्ययन (पृ० २.१९-२२०) आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना।

४७. हरिवंश पुराण (आचार्य जिनसेन), सर्ग ६१/१५-१६

४८. प्रद्युम्न चरित : (सधारु), छन्द ६६५

४९. नेमीश्वर रासु : नेमिचन्द्र : छन्द ११९०

५०. वही, छन्द ११९८ एवं १२००

कृष्ण का बाल-गोपाल रूप

१. डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर : वैष्णव, शैव और अन्य धार्मिक मत (हिन्दी अनुवाद) पृ० ४०-४१। प्र० : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।

२. वही, पृ० ४३

३. हरिवंशपुराण—आचार्य जिनसेन ३५/४३

४. पुष्पदन्त : तिसट्ठि-महापुरिस-गुणालंकारु ८५/६

५. पुष्पदन्त : तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकारु ८५/१०

६. जिनसेन : हरिवंशपुराण ३५/५५-५७

७. हरिवंशपुराण : शालिवाहन, (हस्तलिखित प्रति), छन्द १७०७-८

८. नेमीश्वर रास : नेमिचन्द्र, छन्द १६८

९. पाण्डव यशो रसायन : मरुधर केसरी मुनिश्री मिश्रीमल, पृ० १७७/४७

१०. नेमीश्वर रास : नेमिचन्द्र, छन्द १६९ (हस्तलिखित प्रति)

११. पाण्डव यशोरसायन : मुनि मिश्रीमल्ल, पृ० १७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

(क) महाभारत की कृष्णकथा

पृथ्वी के दुख से दुखी होकर देवगण तथा ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु से पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की। उन भगवान् ने लोक-कल्याण के लिए तथा पृथ्वी पर मानस रूप में उत्पन्न दैत्यों का नाश करने के लिए यदुवंश में वसुदेव-देवकी के यहाँ कृष्ण रूप में अवतार लिया। उनका जन्म यदुवंश की वृष्णि शाखा में हुआ था। बलरामजी उनके बड़े भ्राता थे तथा पाण्डवों की माता कुन्ती उनकी बुआ थीं।

कृष्ण बड़े ही पराक्रमी वीर पुरुष थे। बाल्यकाल में ही उन्होंने पूतना, बकासुर, केशी, वृषभासुर, शकटासुर आदि दुष्टों का वध किया। गायों की रक्षा के लिए उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत को धारण किया। किशोरावस्था में मथुरा के राजा कंस के महान् शक्तिशाली मल्ल चाणूर का वध किया। कृष्ण ने द्वारिका नगरी में अपने कुल का राज्य स्थापित किया। यह नगरी पश्चिमी समुद्रतट पर थी। द्रौपदी के स्वयंवर के समय कृष्ण अनेक वृष्णिवंशी वीरों के साथ द्वारिका से आये थे। अर्जुन के लक्ष्यभेद करने पर तथा द्रौपदी द्वारा उनके गले में जयमाला डाल देने पर जब कौरव पक्ष के लोग उनसे युद्ध करने को तत्पर हुए तब कृष्ण ने वहाँ उपस्थित सभी राजा-महाराजाओं को समझाया। अन्धक और वृष्णिवंशी वीरों के नेता कृष्ण को न्याय का पक्ष लेते देखकर सभी राजाओं ने युद्ध की बात छोड़कर चुपचाप अपने-अपने घर की राह पकड़ी।

धृतराष्ट्र के बुलाने पर जब पाण्डवगण हस्तिनापुर गये तब कृष्ण भी उनके साथ वहाँ गये। युधिष्ठिर के लिए खाण्डवप्रस्थ में इन्द्रप्रस्थ नगरी का निर्माण कृष्ण की कृपा से हुआ। पाण्डवों को धृतराष्ट्र द्वारा प्रदत्त राज्यों में सब प्रकार से सुस्थिर करके कृष्ण द्वारिका लौटे। तत्पश्चात् प्रभास तीर्थ में अर्जुन के आगमन पर कृष्ण उससे मिलने वहाँ गये। वे उसे लेकर द्वारिका गये। इसी अवसर पर कृष्ण के संकेत से अर्जुन ने उनकी बहिन सुभद्रा का अपहरण किया तथा बाद में दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ। खाण्डव-वन दाह में कृष्ण ने अर्जुन की सहायता की। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए उन्होंने भीम द्वारा मगध के शक्तिशाली नरेश जरासन्ध का वध करवाया। उन्होंने जरासन्ध के पुत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहदेव को मगध के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। राजसूय यज्ञ के अवसर पर उपस्थित सभी राजाओं में वे ही सर्वप्रथम वन्दनीय माने गये। उनकी इस प्रतिष्ठा का शिशुपाल ने विरोध किया तथा कृष्ण के लिए कटुवचन कहे। अप्रसन्न हुए कृष्ण ने उपस्थित सभी राजाओं के समक्ष चेदि देश के राजा शिशुपाल का शिरच्छेद कर दिया।

युधिष्ठिर को कौरवों द्वारा द्यूत-क्रीड़ा में हराये जाने पर जब दुःशासन द्रौपदी को भरी सभा में खींचकर ले आया तथा उसके चीरहरण का प्रयास किया तब कृष्ण ने ही उसकी रक्षा की। पुनः द्यूतक्रीड़ा में युधिष्ठिर को फँसाकर जब पाण्डवों को बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास मिला तब भी कृष्ण वन में पाण्डवों से मिलने गये तथा कौरवों की, इस कृत्य के लिए, निन्दा की। वनवास व अज्ञातवश की अवधि पूर्ण हो जाने पर विराट-नरेश की पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर कृष्ण विराट नगर आये तथा पाण्डवों की पुनः राज्यप्राप्ति की न्यायोचित माँग के लिए अपना समर्थन व्यक्त किया। दुर्योधन द्वारा इस माँग को अस्वीकार किए जाने पर दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारी होने लगी। कृष्ण इस युद्ध को टालने के लिए तथा दोनों पक्षों में शान्ति स्थापना के लिए पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरव-सभा में गये। लेकिन अपने उद्देश्य में वे सफल न हो सके। कालान्तर में कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पाण्डवों में भीषण युद्ध हुआ जो महाभारत के नाम से विख्यात है। इस युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन के सारथी के रूप में पाण्डवों की सहायता की।

युद्ध-क्षेत्र में अपने बन्धु-बान्धवों, सगे-सम्बन्धियों को आमने-सामने लड़ने-मरने को तत्पर देखकर अर्जुन युद्ध से उदास हो गये। युद्ध की निरर्थकता व जीवन की क्षणभंगुरता को प्रत्यक्ष देख, मोहग्रस्त हो, उन्होंने युद्ध करने से इंकार कर दिया। तब कृष्ण ने अर्जुन के मोह को दूर करने तथा उसे कर्मक्षेत्र में प्रवृत करने के लिए तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया। महाभारत का भीषण युद्ध पूरे अठारह दिन तक चला। कृष्ण की सूझ-बूझ, नीति-कुशलता तथा प्रेरणा से पाण्डवगण युद्ध में विजयी हुए। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हो जाने पर कृष्ण यादव वीरों सहित द्वारिका लौट गये। पुनः युधिष्ठिर के अश्वमेध के अवसर पर वे हस्तिनापुर आये। उसी समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ मे उत्पन्न बालक को, जो कि मृतक समान था, कृष्ण ने जीवित किया तथा उसका परीक्षित नामकरण किया।

महाभारत के मौसल पर्व में कृष्ण के परमधाम गमन से सम्बन्धित जो विवरण है उसके अनुसार महाभारत युद्ध के ३६ वर्ष पश्चात् विश्वामित्र, कण्व, नारद आदि के शाप से कृष्ण के पुत्र साम्ब से एक महाविकट मूसल उत्पन्न हुआ। इस समय तक भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यादववंशी वीरों का चरित्र मद्यपान आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्गुण से अत्यधिक भ्रष्ट हो गया था। कृष्ण ने द्वारिका में मद्य-निषेध करा दिया था। साम्ब से उत्पन्न मूसल को चूर्ण करके समुद्र किनारे फिंकवा दिया गया। परन्तु इस सावधानी के बाद भी काल यदुवंशियों के पीछे ही घूम रहा था। एक दिन कृष्ण की आज्ञा से सभी यदुवंशी प्रभास तीर्थ गये। वहाँ अत्यधिक मद्यपान से भ्रष्ट चित्त होकर परस्पर विवाद करते हुए वे लड़ने लगे। मूसल के चूर्ण से उत्पन्न घास एरका (जिसका कि तिनका हाथ में आते ही मूसल बन जाता था) से लड़कर सभी यदुवंशी विनाश को प्राप्त हुए। बलराम जी ने योग धारणकर समाधिमरण प्राप्त किया। वन में अकेले भटकते हुए कृष्ण जब आराम करने के लिए पृथ्वी पर लेटे तो मृग के धोखे से जरा नामक व्याध ने अपने तीक्ष्ण तीर से उन्हें घायल कर दिया। कृष्ण परमधाम सिधार गये। यादवों का विनाश सुन अर्जुन द्वारिका आये। यादव स्त्रियों, बच्चों तथा वृद्धों को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ की ओर रवाना हो गये। उनके जाने के पश्चात् द्वारिकापुरी धीरे-धीरे समुद्र में ही समा गयी।

(ख) घटजातक की कृष्णकथा

प्राचीन काल में उत्तरापथ के कंसभोग राज्यान्तर्गत असितंजन नगर में मकाकंस नामक राजा राज्य करता था। उसके कंस और उपकंस नामक दो पुत्र थे और देवगम्भा नामक पुत्री थी। पुत्री के जन्म के समय ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि इसके पुत्र से कंस के वंश का नाश होगा। राजा मकाकंस स्नेहाधिक्य के कारण पुत्री को मरवा नहीं सका, पर यह भविष्यवाणी सभी जानते थे। मकाकंस के मरने पर उसका पुत्र कंस राजा हुआ और उपकंस उपराजा। उन्होंने विचार किया—यदि हम बहिन को मारेंगे तो निन्दा होगी अतः इसे अविवाहित रखें जिससे इसके सन्तान ही नहीं होगी। उन्होंने अपनी बहिन के निवास के लिए पृथक् मकान बना दिया और उसकी पहरेदारी पर नन्दगोपा और उसका पति अंधकवेणु नियुक्त कर दिये।

उस समय उत्तर मथुरा में महासागर नाम का राजा राज्य करता था। उसके सागर और उपसागर दो पुत्र थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सागर राजा हुआ और उपसागर उपराजा। उपसागर और उपकंस दोनों मित्र थे। उनकी पढ़ाई एक ही आचार्यकुल में साथ-साथ हुई थी। उपसागर ने अपने भाई के अन्तःपुर में कोई दुष्टता की अतः वह भाई के भय से मथुरा से भागकर असितंजन नगर में अपने मित्र उपकंस के पास चला गया। कंस-उपकंस ने उसे आदर के साथ अपने यहाँ रखा। उपसागर ने किसी दिन देवगम्भा को देख लिया और दोनों में प्रेम हो गया। नंदगोपा की सहायता से वे दोनों एकान्त में मिलने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगी। देवगम्भा गर्भवती हो गयी। रहस्योद्घाटन हो जाने पर कंस-उपकंस ने उपसागर को अपनी बहिन इस शर्त पर विवाह दी कि यदि उससे कोई लड़का होगा तो वे उसे मार देंगे। देवगम्भा ने लड़की को जन्म दिया। उसका नाम अंजनदेवी रखा गया। कंस ने गोवड्ढमान नामक ग्राम उपसागर को दे दिया। वह अपनी पत्नी देवगम्भा तथा सेवक, सेविका अंधकवेणु-नन्दगोपा सहित वहाँ रहने लगा।

कुछ समय पश्चात् संयोगवश देवगम्भा और नन्दगोपा—दोनों साथ-साथ गर्भवती हुईं। देवगम्भा के पुत्र हुआ तथा नन्दगोपा के पुत्री। भाइयों द्वारा पुत्री को मार देने के भय से देवगम्भा ने उसे नन्दगोप को दे दिया और उसकी पुत्री स्वयं ले ली। इस प्रकार देवगम्भा के क्रमशः दस पुत्र हुए और नन्दगोपा के दस पुत्रियाँ। देवगम्भा के सभी पुत्र नन्दगोपा के पुत्र प्रसिद्ध हुए और वे 'अंधकवेणु दासपुत्र' के नाम से पहचाने गये। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) वासुदेव, (२) बलदेव, (३) चन्द्रदेव, (४) सूर्यदेव, (५) अग्निदेव, (६) वरुणदेव, (७) अर्जुन, (८) प्रद्युम्न, (९) घटपंडित, और (१०) अंकुर।

वे दसों पुत्र बड़े होने पर लूटमार करने लगे। लोगों ने राजा कंस से निवेदन किया। राजा ने अंधकवेणु को बुलवाया। उसने भयभीत होकर सारा भेद बता दिया कि वे मेरे पुत्र नहीं है, देवगम्भा-उपसागर के पुत्र हैं। कंस यह सुनकर भयभीत हुआ तथा उसने अपने अमात्यों से विचार-विमर्श किया। यह निश्चय किया गया कि उन्हें मल्लशाला में बुलवाकर राजकीय मल्लों द्वारा मरवा दिया जाए। राजा ने उन्हें मल्लयुद्ध के लिए बुलवाया तथा अपने मल्ल चाणूर और मुष्टिक से मल्लयुद्ध करने को कहा। बलदेव ने बात ही बात में चाणूर और मुष्टिक को मार-डाला। तत्पश्चात् कंस स्वयं मारने को उठा परन्तु वासुदेव ने चक्र से कंस और उपकंस दोनों भाइयों को मार दिया।

उन्होंने असितंजन नगर और कंसभोग राज्य पर अधिकार कर लिया और अपने माता-पिता को गोवड्ढमान से बुला लिया। फिर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राज्य प्राप्त करने को वहाँ से निकल पड़े। प्रथम, उन्होंने अयोध्या के राजा कालसेन को पराजित कर उसका राज्य अधिकार में ले लिया। उसके पश्चात् वे द्वारवती पहुँचे, जहाँ एक ओर समुद्र और दूसरी ओर पर्वत था। वहाँ के राजा को मार कर उन्होंने द्वारवती पर भी अधिकार जमा लिया। धीरे-धीरे उन्होंने जम्बूद्वीप के त्रेसठ हज़ार नगरों के समस्त राजाओं को चक्र से मारकर उनके राज्यों को अपने अधिकार में ले लिया। उसके बाद उन्होंने समस्त राज्य को दस भागों में बांट लिया। नौ भाग नौ भाइयों को मिले। दसवें अँकुर ने राज्य नहीं लिया। वह व्यापार में लग गया। उसका राज्य बहिन अंजनदेवी को दिया गया। रोहिणोप्प उनका अमात्य था। अन्त में, वासुदेव महाराज का प्रिय पुत्र मृत्यु को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त हुआ। उससे वे बहुत दुखी हुए। उनके भाई घट पण्डित ने बड़े कौशल से उनका पुत्रशोक दूर किया।

वासुदेवादि दस भाइयों की सन्तानों ने कृष्ण द्वीपायन का अपमान करने के लिए एक तरुण राजकुमार को गर्भवती नारी बताकर सन्तान के विषय में पूछा। कृष्ण द्वीपायन ने उनका विनाश काल निकट जानकर कहा कि इससे एक लकड़ी का टुकड़ा उत्पन्न होगा और उससे वासुदेव के कुल का नाश होगा। तुम लकड़ी जला देना तथा उसकी राख नदी में फेंक देना। अन्त में, उसकी राख से उत्पन्न अरण्ड के पत्तों द्वारा सब लोग परस्पर लड़कर मर गये। मुष्टिक ने मरकर यक्ष के रूप में जन्म ग्रहण किया। वह बलदेव को खा गया। वासुदेव अपनी बहिन और पुरोहित को लेकर वहाँ से चला गया। मार्ग में जरा नामक शिकारी ने भ्रम से वासुदेव पर शक्ति फेंक कर उसे घायल कर दिया जिससे उसका प्राणान्त हो गया।

(ग) सन्दर्भ साहित्य

[नोट—सूची अकारादि क्रम से है। कोष्ठक में पुस्तक की भाषा दी गयी है।]

अन्तकृद्दशांग सूत्र (प्राकृत)
अपभ्रंश साहित्य (हिन्दी)—डॉ० हरिवंश कोछड़
आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ (हिन्दी)—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त
उत्तरपुराण (महापुराण : संस्कृत)—गुणभद्राचार्य
उत्तरपुराण (हिन्दी, हस्तलिखित)-खुशालचन्द काला
उत्तराध्ययन सूत्र (प्राकृत)
गयसुकुमाल रास (हिन्दी)—देवेन्द्रसूरि (देल्हण)
छान्दोग्य उपनिषद् (संस्कृत)
जातक : चतुर्थखण्ड (पाली)
जैनधर्म (हिन्दी)—पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री
जैनधर्म का मौलिक इतिहास (हिन्दी)—आचार्य हस्तीमलजी
जैन साहित्य और इतिहास (हिन्दी)—नाथूराम प्रेमी
तिलोयपण्णति (प्राकृत)
दि एनालस एण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान (अँग्रेज़ी)
—कर्नल जेम्स राड
निरयावलिका (प्राकृत)
नेमिचन्द्रिका (हिन्दी : हस्तलिखित) मनरंगलाल
नेमिनाथ फागु (हिन्दी : हस्तलिखित) जयशेखर सूरि
नेमीवश्र रास (हिन्दी : हस्तलिखित) नेमिचन्द्र
नेमनाथ रास (हिन्दी) : सुमतिगाणि
नेमिनाथ चरित्र (हिन्दी-हस्तलिखित) अजयराज पाटनी
नेमीश्वर की बोली (हिन्दी : हस्तलिखित) कवि ठाकुरसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नेमीश्वर चन्द्रायण (हि० : हस्त०)—नरेन्द्र कीर्ति
प्रद्युम्न चरित (हि० : हस्त०) मन्ना लाल
प्रघुम्न रासो (हि० : हस्त०) ब्रह्म रायमल्ल
प्रद्युम्न चरित (सं०)—महासेन
प्रद्युम्न चरित (हि०)—सधारु
प्रद्युम्न चरित (हि० : हस्त०)—देवेन्द्र कीर्ति
प्रश्न व्याकरण (प्रा०)
प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति—दामोदर धर्मानन्द कौसाम्वी
पाण्डवपुराण (अपभ्रंश)—यशकीर्ति
पाण्डवपुराण (सं०)—शुभचन्द्र
पाण्डव पुराण (हि०)—बुलाकी दास
पाण्डव यशोरसायन (हि०)—मुनि मिश्रीमल
बलिभद्र चौपई (हि० : हस्त०)—यशोधर
वलभद्रवेली (हि० : हस्त०) कवि सालिग
भगवद् गीता (सं०)
भारतीय संकृति और अहिंसा—धर्मानन्द कौसाम्वी
मध्यकालीन धर्म साधना (हि०)—हजारी प्रसाद द्विवेदी
महाभारत (सं०) मुनिश्री हजारीमल स्मृतिग्रन्थ (हि०)
रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (हि०)—डॉ० राजाराम जैन
राजस्थान में जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची भाग १,२,३,४
(प्रका०)—प्रवन्धकरिणी समिति श्री महावीर जी क्षेत्र, जयपुर)
राजस्थानी नेमि साहित्य (हि०) —डॉ० नरेन्द्र भानावत
रिट्ठणेमि चरिउ (अप०)—स्वयंभू
वैष्णविज्म शैविज्म एण्ड अदर रिलीजीयस सिस्टम्स(अ.)—डॉ० आर. जी. भण्डारकर
समवायांग सूत्र (प्रा०)
सूर साहित्य—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
शम्व-प्रद्युम्न रास (हि० : हस्तलिखित)
श्री मद्भागवत पुराण (सं०)
हरिवंशपुराण (सं० : वैष्णव पुराण)
हरिवंश पुराण (तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु : अपभ्रंश)—पुष्पदन्त
हरिवंशपुराण (हि०—हस्हलिखित) —शालिवाहन
हरिवंशपुराण हि०—हस्तलिखित)—खुशालचन्द काला
त्रिषण्ठिशलाकापुरुष चरित्र (सं०)—हेमचन्द्राचार्य
ज्ञातृधर्म कथा (प्रा०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० महावीर कोटिया

11 सितम्बर 1936 को ग्राम हरसाना, जिला अलवर, राजस्थान के एक जैन परिवार में जन्मे डॉ० महावीर कोटिया लेखन, पत्रकारिता तथा अध्यापन के क्षेत्र में लम्बी अवधि से सक्रिय रहे हैं। सन् 1955 में 'टूटी वीणा' शीर्षक से इनका एक कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ था। तब से लगातार विभिन्न विषयों पर एवं विविध विधाओं में ये लिखते रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं तथा स्मृति-ग्रन्थों में प्रकाशित अनेक लेखों के अतिरिक्त आपके दो लघु उपन्यास (धारावाहिक प्रकाशित) तथा एक कहानी संकलन भी प्रकाशित हुआ है। इन्होंने जयपुर से प्रकाशित 'जैन संगम' मासिक का चार वर्ष तक सम्पादन किया। पिछले लगभग 20 वर्षों से आप भारत सरकार के केन्द्रीय विद्यालय संगठन द्वारा संचालित केन्द्रीय विद्यालयों में कार्यरत हैं तथा सम्प्रति केन्द्रीय विद्यालय, वायुसेना केन्द्र, कानपुर में उपप्रधानाचार्य के पद पर कार्य कर रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध
और अप्रकाशित सामग्री का
अनुसन्धान और प्रकाशन
तथा लोक - हितकारी
मौलिक साहित्य का निर्माण

●

संस्थापक
(स्व०) साहू शान्ति प्रसाद जैन
(स्व०) श्रीमती रमा जैन

अध्यक्ष
साहू श्रेयांस प्रसाद जैन

मैनेजिंग ट्रस्टी
श्री अशोक कुमार जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi